UNIVERSAL
LIBRARY
OU_182867
UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 82·08 / R27K Accession No. H 2975

Author रस्तोगी, विनोद ।

Title कसम कुरान की / 1956

This book should be returned on or before the date last marked below.

कसम कुरान की

[एकांकी नाटक]

विनोद रस्तोगी

लखनऊ
अशोक प्रकाशन
१९५९

प्रथम संस्करण १९५६

(C) १९५६

ॐ सर्वाधिकार स्वरक्षित हैं

मुद्रक
महाबीर प्रसाद
प्रेन प्रेस, कटरा, प्रयाग

विषय-सूची

१.	लूप-होल	५
२.	पाप का पुण्य	२१
३.	जावली-विजय	३६
४.	प्यार और पैसा	४९
५.	कसम कुरान की	६७
६.	सोना और मिट्टी	७५
७.	काला दाग	९१
८.	रथ के पहिये	१०२
९.	पैसा, लड़की और जनसेवा ...	११५
१०.	रत्ना की आग	१३६
११.	मंगल, मानव और मशीन ...	१४८

लूप-होल

पात्र—नीलिमा—हरीश की पत्नी, अवस्था १९ वर्ष।
प्रतिमा—नीलिमा की छोटी बहन, अवस्था १५ वर्ष।
राजेश—नीलिमा का बडा भाई, अवस्था २४ वर्ष।
रजनी—राजेश की पत्नी, अवस्था २० वर्ष।
हरीश—नीलिमा का पति, अवस्था २३ वर्ष।
स्थान—नीलिमा के पिता के घर का एक कमरा।
समय—होली से एक दिन पहले की सन्ध्या।

(कमरे के फर्श पर दरी बिछी है। बीच में एक छोटी गोल मेज़ है जिस पर हलके नीले रंग का मेजपोश है। मेज़ के आस-पास चार कुर्सियाँ पड़ी हैं। कमरे की दीवारें हलके नीले रंग की हैं। कमरे में तीन द्वार हैं। तीनों पर पर्दे पड़े हैं। बाईं ओर का द्वार बाहर के बरामदे में, सामने का अन्दर के बर मदे में तथा दाईं ओर का दूसरे कमरे में खुलता है। सामने की दीवार से सटकर बायें कोने में एक छोटी मेज़ है जिस पर रेडियो रखा है। दाहिने कोने में एक रैक है, जिसमें कुछ पुस्तकें ठीक से सजी हैं।

पर्दा उठने पर कमरे में नीलिमा दिखाई पड़ती है। वह इकहरे बदन की सुन्दर, आकर्षक तथा गौर वर्णवाली युवती है। हलके गुलाबी रंग की साड़ी पहने है। उसी से मिलता-जुलता ब्लाउज है। वह रैक से कोई पुस्तक निकाल रही है, अतः उसकी पीठ सामने की ओर है और ब्लाउज़ नए फैशन का होने के कारण उसकी पीठ का कुछ भाग दिखाई पड़ रहा है। दो एक पुस्तकें उठाकर उनके पृष्ठ उलट-पुलट कर वह उन्हें रख देती है। अन्त में एक पुस्तक पसन्द करके वह आकर कुर्सी पर बैठ जाती है और पैर मेज़ पर फैलाकर पुस्तक पढ़ने में तल्लीन हो जाती है। दाहिने ओर के द्वार से रजनी आती है। वह भी सुन्दर है। शरीर अपेक्षाकृत कुछ मांसल है। श्वेत साड़ी और ब्लाउज़ पहने है।)

रजनी—(नीलिमा के हाथ से पुस्तक छीनकर मेज़ पर पटकती हुई) यह कौन-सी आदत है तुम्हारी ? जब देखो तब किताबे—किताबें !

नीलिमा—(मुस्कराकर) और क्या करूँ ! तुम्हें तो भइया से ही फुरसत नहीं मिल पाती भाभी ! आखिर मन बहलाने का कुछ तो साधन होना ही चाहिए !

रजनी—(**दूसरी कुर्सी पर बैठकर हँसती हुई**) घबराती क्यों हो? तुम्हें भी अब किताबों की जरूरत नही पडेगी। हरीश बाबू इसी गाड़ी से आते ही होगे! जी भरकर होली मनाना बीबी रानी।

नीलिमा—(**कृत्रिम क्रोध से**) भाभी! तुमसे हजार बार कह चुकी हूँ कि मुझे बीबी रानी न कहा करो। मेरा नाम क्यो नही लेतीं?

रजनी—अच्छा नाम ही सही। नीलिमा! मैंने ही हरीश बाबू को बुलाने की तरकीब सोची थी। मेरा मुंह मीठा करना न भूलना!

(**सामने के द्वार से प्रतिमा का प्रवेश। वह नीलिमा के ही समान है। चंचलता उसमें अपेक्षाकृत अधिक है। नीली साड़ी तथा ब्लाउज़ पहने है।**)

प्रतिमा—अकेले ही मुँह मीठा नही कर सकती भाभी। जीजाजी को बुलवाने मे मेरा भी हाथ है।

नीलिमा—जा, काम कर जाकर अपना। जब देखो तब बीच में कूद पड़ती है।

प्रतिमा—(**कुर्सी पर बैठकर**) और क्या करूँ! (**रजनी की ओर मुड़कर**) भाभी! आने दो जीजाजी को, वह छकाऊँगी कि छठी का दूध याद आ जाय।

नीलिमा—जा, जा। बडी आई छकानेवाली!

प्रतिमा—देखा भाभी! इसे कहते है दुनियाँ! वर्षो से साथ रहनेवाली बहन कुछ नही और अभी कुल (**उँगलियों के पोरों को गिन कर**) १० महीने के साथी जीजाजी सब कुछ हो गए।

रजनी—तुम भी ऐसा ही करोगी प्रतिमा, जरा शादी तो होने दो।

(**नीलिमा और रजनी हँसती है। प्रतिमा लजा जाती है।**)

प्रतिमा—(**एक क्षण बाद**) ऐसी बातें करोगी भाभी तो मैं सब कुछ बता दूँगी जीजाजी को!

रजनी—नहीं, नहीं। ऐसा न करना। सारा गुड़-गोबर हो जायगा!

नीलिमा—(**उत्सुकता से**) क्या बात है प्रतिमा?

प्रतिमा—भाभी से पूछो।

नीलिमा—मेरी अच्छी भाभी रानी! बता दो न, क्या बात है?

रजनी—नही बताती।

नीलिमा—तुम्हे मेरी सौगन्ध भाभी।

रजनी—(**सिर हिलाकर**) नही। उन्होंने मना किया है।

नीलिमा—(**और अधिक उत्सुकता से**) मेरा मरा मुंह देखो, अगर न बताओ तो।

(**रजनी और प्रतिमा एक दूसरे की ओर देखती है। आँखों-ही-आँखों में कुछ निश्चय करती है।**)

रजनी—तुम ही बता दो प्रतिमा।

प्रतिमा—मामूली-सी बात है। उसमें बताना क्या है!

नीलिमा—बता भी दे!

प्रतिमा—(**सँभलकर**) बात यह है कि जीजाजी को हमने झूठा तार देकर बुलाया है।

नीलिमा—(**न समझने के ढंग से**) झूठा तार?

प्रतिमा—हाँ। वैसे तो वे आते नही! होली पर ससुराल आने में सभी घबराते है। फिर जीजाजी की तो पहली ही होली है, इसलिए हमने झूठा तार दे दिया है ताकि वे दौडते हुए चले आएँ।

नीलिमा—(**घबराकर**) लेकिन लिखा क्या था तार मे?

प्रतिमा—(**रजनी की ओर मुड़कर**) भाभी! आधी बात मैंने बता दी है, अब आधी बात तुम बताओ।

रजनी—तार मे लिख दिया है कि नीलिमा की तबियत बहुत ख़राब है, फौरन आओ।

नीलिमा--(**व्यग्रता से**) यह क्या किया भाभी तुमने!

रजनी--मैंने क्या किया! तार तो तुम्हारे भइया ने ही दिया है।

नीलिमा--(**आश्चर्य से**)भइया ने दिया! (**एक क्षण बाद**) किसी ने भी दिया हो, यह अच्छा नही किया। वे घबरा जायँगे और बेकार ही परेशान होगे।

प्रतिमा--(**हाथ नचाकर**) तो क्या हुआ! आखिर हमारा भी तो उन पर कुछ अधिकार है।

नीलिमा--उनका क्रोध तू नही जानती। जब सच बात मालूम होगी तो बहुत बिगडेगे।

प्रतिमा--मजाक है बिगडना! साली हूँ मै, साली! साली होने के नाते क्या होली पर इतनी हँसी भी नही कर सकती!

रजनी--मै भी सलहज हूँ। मेरा भी हक है।

नीलिमा--(**घबराकर**) लेकिन ····· लेकिन····· । ओह! मै कैसे समझाऊँ कि····· ! भाभी! वे मुझे प्राणो से अधिक चाहते भी है। कही······कही····· !

(**नीलिमा परेशान हो उठती है। बाहर से राजेश आता है। वह स्वस्थ युवक है। पाजामा-कुर्ता और चप्पल पहने है।**)

राजेश--क्या बात है नीलिमा ?

रजनी--हम लोगो का तार देना इन्हे अच्छा नही लगा है।

राजेश--(**हँसकर नीलिमा से**) होली पर ऐसा होता ही है! तुम तो भूमिका सुनकर ही घबरा गई। कही पूरी स्कीम बता दूँ तब तो तुम्हारा हार्ट ही फेल हो जाय शायद!

नीलिमा--(**रुँआसे स्वर में**)उनका हृदय बहुत कोमल है भइया! वे····· वे·····मुझे·····!

राजेश--(**बीच में ही**) यही तो देखना है! (**कलाई पर बँधी**

घड़ी की ओर देखकर) गाड़ी का समय हो गया है। तुम अपने कमरे में जाओ नीलिमा। और हाँ, तुम्हे कसम है मेरी जो तुमने हमारी बातो में दखल दिया।

नीलिमा—(**व्यग्रता से**)लेकिन····· लेकिन आप लोग·····!

राजेश—बस, अब तुम जाओ। जब तक प्रतिमा तुम्हें बुलाने न जाय तुम यहाँ न आना।

नीलिमा—(**उठकर**) लेकिन भइया कही कुछ अनर्थ·····!

राजेश—तुम चिन्ता न करो किसी बात की। जाओ अब। हरीश के आने का समय हो गया है।

(**नीलिमा अनिच्छापूर्वक अन्दर जाती है।**)

राजेश—(**कुर्सी पर बैठकर रजनी से**) नीलिमा को पूरी बात तो नही बताई ?

रजनी—नही। मैं तो तार के बारे मे भी न बतातीं लेकिन प्रतिमा·····।

प्रतिमा—मेरा नाम क्यो लगाती हो भाभी ?

राजेश—अच्छा, अच्छा। जो हुआ, ठीक हुआ। अब आगे की सोचना है। तुम लोग अपना पार्ट अदा कर लोगी ?

रजनी—(**प्रसन्न स्वर में**) इस खूबी से कि देखनेवाले दाँतों तले उँगली दबा लें!

राजेश—और तुम प्रतिमा ?

प्रतिमा—पास-पडोस वाले आ जायँ तब कहियेगा !

राजेश—(**हँसकर**) मुझे पास-पडोस वालों को नही बुलाना है; जो काम हो ठीक ढंग से हो! समझी ?

प्रतिमा—
रजनी— } (**एक साथ**) जी, हाँ।

राजेश—(**प्रसन्न होकर**) वेरी गुड।

(**नेपथ्य से ताँगे की आवाज आती है। ताँगा बाहर आकर रुक जाता है।**)

राजेश—(**धीमे स्वर में**) नाउ, रेडी।

(**तीनों उदास मुद्रा में बैठ जाते हैं। बाहर से हरीश आता है। वह सूट पहने है। गले में भड़कीली टाई है। हाथ में छोटा-सा अटैची है। उसे देखकर प्रतिमा सिसकने लगती है और रजनी की आँखों में भी आँसू भर आते हैं।**)

राजेश—(**रुद्ध कंठ में**) तुमने आने में देर कर दी हरीश!

हरीश—(**अटैची फर्श पर पटककर व्याकुल स्वर में**) क्यों क्या नीलिमा·····!

(**हरीश का वाक्य अपूर्ण रह जाता है। रजनी और प्रतिमा फूट-फूट कर रोने लगती है। राजेश भी जेब से रूमाल निकालकर अपने आँसू पोछता है।**)

हरीश—(**दोनों हाथों से सर थामकर कुर्सी पर बैठता हुआ आर्द्र स्वर में**) तुम मेरी प्रतीक्षा भी न कर सकी नीलू! (**वह सिसक-सिसक कर बच्चों की तरह रोने लगता है।**)

राजेश—(**संयत होकर अपना रूमाल हरीश की ओर बढ़ाता हुआ**) आँसू पोंछ डालो हरीश। अब रोने से क्या लाभ!

हरीश—(**सिसककर**) मेरा·····ससार····· लुट गया और···

और तुम कहते हो कि····!

प्रतिमा—जीजाजी! बडे निष्ठुर हैं आप! दीदी आपके दर्शन के लिए तरसती रही और आप अब आए हैं!

(**हरीश और फूट-फूट कर रोने लगता है।**)

रजनी—पुरुष होते ही हैं ऐसे!

राजेश---सब पुरुषो को क्यों सानती हो! जो कुछ कहना है हरीश से कहो ।

हरीश---(**कुछ संयत होकर**) आप का तार मिलते ही तो दौड़ा आया हूँ ! अगर आप तार पहले देते तो·····!

रजनी---(**मध्य में ही**) हमे क्या मालूम था कि·····कि बिचारी चन्द घटो की ही मेहमान है !

हरीश---(**सहसा जैसे कुछ याद करके**) बाबूजी कहाँ है ?

राजेश---वे बिहार गए है। उन्हे भी तार दे दिया है। कल तक आ जायँगे ।

प्रतिमा---मरते समय दीदी आपकी चरण-रज लेना चाहती थी। उनकी इच्छा अपूर्ण रह गई। (**सिसकने लगती है ।**)

रजनी---आठ-दस घण्टे पहले आ जाते तो बिचारी की आत्मा को शान्ति मिल जाती ! (**सिसकती है ।**)

राजेश---(**एक निश्वास छोड़कर**) जो होना था, हो गया। भगवान् की इच्छा के आगे हम क्या कर सकते है ! (**रजनी और प्रतिमा की ओर देखकर**) तुम लोग अन्दर जाओ। हरीश को और ज्यादा परेशान न करो ।

हरीश---(**रुद्ध कठ से**) यह घाव जीवन भर नही भरेगा। एक अमिट वेदना लिये अब तो जिन्दगी का बोझा ढोना है।

प्रतिमा---(**कटाक्षपूर्ण दृष्टि से हरीश की ओर देखकर**) समय बहुत बडा डाक्टर है जीजाजी ! बडे-बडे घाव भर देता है वह।

(**हरीश विचित्र दृष्टि से उसकी ओर देखता है। वह उठकर सामनेवाले द्वार से अन्दर चली जाती है। रजनी भी पीछे-पीछे जाती है। राजेश अपनी कुर्सी उसके पास खिसका लेता है।**)

राजेश---(**कोमल स्वर में**) मुझे तुमसे सहानुभूति है हरीश।

लेकिन·····लेकिन अब धीरज रखने के अतिरिक्त और उपाय ही क्या है !

हरीश—वह तो रखना ही पड़ेगा ! (**उठकर**) मैं इसी गाड़ी से लौट जाऊँगा ।

राजेश—(**उठकर**) अरे, अरे ! यह क्या कर रहे हो। आए हो तो होली के बाद जाना। लोग क्या कहेंगे !

हरीश—(**बैग उठाकर**) कहने दो। मुझे किसी की परवाह नहीं। नीलिमा के बिना यह घर मुझे काटने को दौड़ रहा है। मैं यहाँ एक मिनट भी नहीं रह सकता ।

राजेश—(**आँखों में आँसू भरकर**) जैसी तुम्हारी इच्छा !

(**हरीश बाहरवाले द्वार तक जाता है, फिर सहसा कुछ सोचकर लौट पड़ता है और बैग मेज पर रख देता है।**)

हरीश—मेरे जेवर·····?

राजेश—(**न समझने के कंठ से**) जेवर ?

हरीश—हाँ । नीलिमा अपने साथ सब जेवर ले आई थी । मेरे जेवर मुझे मिल जाने चाहिएँ।

राजेश—(**कुछ तीव्र स्वर में**) जेवर हमारे थे और वे यहीं रहेंगे।

हरीश—(**कुछ कठोर स्वर में**) जेवरों पर हमारा अधिकार है। मैंने वकालत पढ़ी है। कानून भी यही कहता है कि·····।

राजेश—(**बीच में ही व्यंग्य से**) तुमने वकालत सिर्फ पढी है और म करता हूँ। नीलिमा की मृत्यु यहाँ हुई है। कानून की दृष्टि से जेवरों पर हमारा अधिकार है।

हरीश—लोभ ने आपको अन्धा बना दिया है । उचित-अनुचित का ज्ञान आप खो चुके हैं। छोटी बहन का धन रखना महापाप है।

राजेश—और तुम कौन-सा महापुण्य कर रहे हो ! एक तो मेरी

बहन को मार डाला और दूसरे अब उसके जेवर हड़पना चाहते हो ताकि उसकी सौत को पहना सको!

हरीश—(**चीखकर**) मैं पूछता हूँ, आप जेवर देंगे या नही?

राजेश—(**चीखकर**) मैं कहता हूँ, नही, नहीं, नही।

हरीश—मैं कहता हूँ नीलिमा मेरी पत्नी थी, उसके जेवरों पर मेरा अधिकार है।

राजेश—और मैं कहता हूँ नीलिमा मेरी बहन थी, उसके जेवरों पर मेरा अधिकार है।

हरीश—आप ऐसे नही देगे तो मैं न्यायालय की शरण लूँगा।

राजेश—चिन्ता नही।

(**अन्दर से रजनी आती है।**)

रजनी—यह क्या झगड़ा मचा रखा है आप लोगों ने?

राजेश—(**अजीब स्वर में**) नीलिमा के जेवर चाहिएँ इन्हें!

रजनी—पुरुष झगड़ा करना जानते है निबटाना नही। (**राजेश की ओर मुड़कर**) आप बाहर जाइए। मैं सब ठीक कर दूँगी।

राजेश—(**बाहर जाते-जाते**) लेकिन मैं कहे देता हूँ जेवर नही दिए जायँगे!

(**राजेश बाहर चला जाता है। रजनी हरीश को बैठने का संकेत करती है। हरीश बैठ जाता है। रजनी भी बैठ जाती है।**)

रजनी—छोटी-छोटी बातों के लिए आप लोगों को लडना नही चाहिए। आज ही बिचारी की मृत्यु हुई है और आज ही उसके जेवरों के लिए झगड़ा हो रहा है। लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे!

हरीश—मुझे लोगों की चिन्ता नहीं। लोगों के डर से मैं दस हजार के जेवर नहीं छोड़ सकता।

रजनी—लोग समझेंगे आपको नीलिमा से नही, उसके जेवरों से प्यार था !

हरीश—समझने दो । मुझे जेवर चाहिएं, और मै कुछ नही जानता ।

रजनी—(**गम्भीर स्वर में**) आपको जेवर चाहिएँ ?

(**हरीश स्वीकारात्मक सिर हिलाता है।**)

रजनी—तो ऐसा न किया जाय कि साँप भी मर जाय और लाठी भी न टूटे ! आपको जेवर भी मिल जायँ और उनकी चिन्ता भी दूर हो जाय—!

हरीश—मै समझा नही आपका मतलब ।

रजनी—उन्हें जेवर अपने लिए तो चाहिए नही ! आप भी अपनी दूसरी पत्नी के लिए ही माँग रहे है। है न यही बात ?

हरीश—किसी की याद मे जीवन भर एकाकी तो रहा नही जा सकता !

रजनी—मै समझती हूँ । आज नही तो कल, शादी तो करनी ही पड़ेगी। मै चाहती हूँ कि···· कि····। अच्छा, प्रतिमा के बारे में आपका क्या ख्याल है ? अगर आप उससे शादी कर लें तो आपको जेवर भी मिल जायं और हमारा उद्धार भी हो जाय !

हरीश—(**घबराकर**) लेकिन····· !

रजनी—(**बीच में ही**) इसमे लेकिन-वेकिन का सवाल ही नही है। प्रतिमा सुन्दर है, पढ़ी-लिखी है, तमीजदार है । और क्या चाहते हैं आप ! इस सम्बन्ध से नीलिमा की आत्मा को भी शान्ति मिलेगी !

हरीश—(**कुछ देर सोचकर**) लेकिन प्रतिमा मान जायगी ?

रजनी—क्यों नही ! उसे तो प्रसन्नता ही होगी ! अपने जीजाजी पर न जाने कब से दीवानी है प्रतिमा !

(प्रतिमा का प्रवेश।)

प्रतिमा—किस पर दीवानी हूँ मै भाभी ?

रजनी—**(हँसकर)** साली अपने जीजा को छोड़कर और किस पर दीवानी होगी !

प्रतिमा—**(बैठकर लजाती हुई)** बड़ी शैतान हो तुम भाभी !

रजनी—**(गम्भीर स्वर में)** प्रतिमा ! हरीश बाबू पसन्द है तुम्हे ? हम लोगों ने इनके साथ तुम्हारी शादी करने का निश्चय किया है।

प्रतिमा—दुख के समय में भी तुम हँसी करने में नही चूकती भाभी !

रजनी—यह हँसी नही है। हरीश बाबू को अपने जेवर चाहिए। जेवर के साथ हम इन्हे पहननेवाली भी दे देगे ।

प्रतिमा—**(हरीश की ओर देख कर व्यंग्य से)** तो यह बात है जीजाजी ! आप जेवर के लिए मुझसे शादी करते है ! **(रजनी की ओर मुड़कर)** भाभी ! क्या मै आप लोगों के लिए ऐसा भार हो रही हूँ कि··· कि एक जानवर के साथ मेरा आँचल बाँध दो !

रजनी—**(तीव्र स्वर मे)** प्रतिमा ! यह क्या कह रही हो तुम ?

प्रतिमा—क्या गलत कह रही हूँ ! आप ही सोचिए, क्या मुझे इनसे प्यार और अपनत्व मिल सकेगा ! यह मुझसे नही, जेवरों से शादी कर रहे है। मेरे मरने के बाद किसी और को ले आयेंगे। ऐसे पुरुषों का क्या !

हरीश—**(क्रुद्ध स्वर में)** इतना अपमान मै सहन नही कर सकता। **(उठकर)** मै जा रहा हूँ।

रजनी—**(उठकर)** आप नाराज हो गए क्या ? इसका स्वभाव

ही ऐसा है। **(प्रतिमा से)** मैं तो चली प्रतिमा। अब तुम ही मनाओ अपने जीजाजी को।

(रजनी अन्दर जाती है। प्रतिमा मुस्कराकर हरीश के सामने खड़ी हो जाती है।)

प्रतिमा—अभी से रूठेंगे तो जिन्दगी कैसे कटेगी! **(हरीश का हाथ पकड़कर बैठाती हुई)** छोटी-छोटी बातों पर रूठना ठीक नही।

हरीश—मुझे जानवर बना दिया और तुम्हारे लिए यह छोटी-सी बात है!

प्रतिमा—**(हँसकर दूसरी कुर्सी पर बैठती हुई)** सभी मनुष्य जानवर है!

हरीश—कहते तो ऐसा ही है!

प्रतिमा—**(मुस्कराकर)** फिर अगर मैंने आपको जानवर बना दिया तो क्या बुरा किया! आप ही बताइए, क्या आप मनुष्य नही है!

हरीश—**(हँसकर)** तुम अपनी बहन से अधिक चतुर हो!

प्रतिमा—**(चपलता से)** और सुन्दर भी!

हरीश—हाँ। उसका सौन्दर्य बँधे हुए जल-सा गम्भीर था, किन्तु तुम्हारा मुक्त पवन की भांति चपल है। चंचलता सौन्दर्य मे चार चाँद लगा देती है, आकर्षण में जादू भर देती है।

प्रतिमा—चापलूसी करना कोई आपसे सीखे!

हरीश—**(मुस्कराकर)** सच्ची बात कहना चापलूसी नही है! सच प्रतिमा, तुमसे मेरा अधूरा जीवन पूरा हो जायगा।

प्रतिमा—**(शरारतपूर्ण ढंग से)** सच?

हरीश—झूठ बोलने की मेरी आदत नही है।

प्रतिमा—**(उसी ढंग से)** आपकी बातो पर न जाने क्यों विश्वास नही होता जीजाजी!

हरीश—**(कुर्सी निकट खिसकाकर)** अब कब तक जीजाजी

कहती रहोगी ?

प्रतिमा—जीवन भर । मेरा मतलब है जीजाजी तो मैं हमेशा कहती रहूँगी ! इसी शर्त पर मैं ···!

हरीश—(**बीच में ही**) तुम्हारी हर शर्त मंजूर है मुझे।

प्रतिमा—(**खड़ी होकर प्रसन्नता से**) तब ठीक है। मैं यह शुभ समाचार जरा जीजी को सुना आऊँ ।

हरीश—(**घबराकर आश्चर्य से**) जीजी को ?

प्रतिमा—उनका चित्र लगा है न मेरे कमरे में !

(**प्रतिमा तेजी से अन्दर चली जाती है। हरीश हँस पड़ता है। वह उठकर टहलने लगता है। उसके अधरों पर विचित्र मुस्कान है। कुछ देर बाद वह मेज पर पड़ी पुस्तक उठाकर कुर्सी पर बैठ जाता है। सामनेवाले द्वार से नीलिमा आती है। उसके मुख पर क्रोध के भाव हैं। हरीश का ध्यान पुस्तक में लगा है। नीलिमा मन्द गति से उसके पीछे आकर खड़ी हो जाती है। बाहरवाले द्वार का पर्दा हटाकर राजेश झाँकता है। सामने के द्वार से रजनी और प्रतिमा झाँक रही हैं। तीनों के मुख पर शरारत भरी मुस्कान है। नीलिमा और हरीश के मुख सामने की ओर होने के कारण वे उन तीनों को नहीं देख सकते हैं। नीलिमा हरीश के कन्धे पर हाथ रखती है।**)

हरीश—(**चौंककर**) आ गई प्रतिमा ? (**पीछे मुड़कर देखता हुआ**) ओह ! तुम हो ! मैं तो समझता था कि·····!

नीलिमा—(**तीखे स्वर में**) मैं मर गई ? (**सिसकते हुए**) मैंने देख लिया कि आप· · आप · मुझे ···· !

(**नीलिमा फूट-फूट कर रोने लगती है। रजनी, प्रतिमा और राजेश अपनी हँसी रोकने का भरसक प्रयास कर रहे हैं।**)

हरीश—(**नीलिमा का हाथ पकड़कर उसे कुछ आगे लाता हुआ**)

कैसी पागल हो तुम! यह तो होली का मजाक है!

नीलिमा—(**सिसकते हुए**) लेकिन होली के इस मजाक ने मुझे आपका सच्चा रूप दिखा दिया।

हरीश—(**समझाने के ढंग से**) तुम समझती क्यों नही? तुम्हारा ख्याल है कि जो कुछ तुमने देखा-सुना, वह मेरा सही रूप था! (**हँसकर**) नही, रास्ते में तुम्हारा बूढ़ा नौकर भोला मिला था। वह रंग और गुलाल लेने जा रहा था। उससे मैंने तुम्हारे बारे मे पूछा। उसने कहा, तुम बिलकुल ठीक हो। तभी मै समझ गया कि जरूर कुछ दाल मे काला है।

(**हरीश खुलकर हँसता है। रजनी, राजेश और प्रतिमा के चेहरों पर आश्चर्य-मिश्रित पराजय के चिह्न है। नीलिमा का हृदय विश्वास-अविश्वास के दो पलड़ों पर झूल रहा है।**)

राजेश—(**पीछे हटकर नेपथ्य से**) भोला दादा! भोला दादा!!

(**हरीश और नीलिमा पीछे मुड़कर देखते है। रजनी और प्रतिमा पीछे हट जाती है, पर हरीश और नीलिमा उन्हें देख लेते है। नेपथ्य से किसी पुरुष की आवाज आती है—"मुझे बुलाया था राजेश भैया?"**)

राजेश—(**नेपथ्य से ही**) हाँ, भोला दादा! तुमने हरीश बाबू से क्या कह दिया था रास्ते में?

भोला—(**नेपथ्य से**)नीलिमा बिटिया के बारे में पूछा था उन्होंने। मैंने कह दिया था कि वह तो बिलकुल ठीक है।

राजेश—(**नेपथ्य से**) तुमने तो सारा खेल ही चौपट कर दिया! उलटे हमीं बेवकूफ बन गए!

भोला—(**नेपथ्य से ही डरे हुए स्वर में**) मुझे क्या मालूम था भइया! मुझसे पूछा उन्होंने, मैंने बता दिया!

(नीलिमा की आँखे हर्ष से खिल उठती है। हरीश उसका हाथ अपने हाथ में ले लेता है। अन्दर से रजनी और प्रतिमा आती है। बाहर से राजेश आता है। तीनों के चेहरों पर पराजय-जन्य उदासी और झेंप के भाव है।)

हरीश—**(नीलिमा का हाथ छोड़कर मुस्कराता हुआ)** आदाब-अर्ज राजेश बाबू। आपने समझा होगा कि आप मुझे बना लेगे!

राजेश—**(झेंपते हुए)** बन तो जाते, मगर स्कीम मे एक कड़ी छूट गई थी!

हरीश—**(हँसकर)** साले के लूप-होल से जीजा ने लाभ उठा ही लिया। आप यह क्यों भूल गए कि साला आखिर साला ही होता है और जीजा जीजा! इसके अतिरिक्त आपको यह भी याद न रहा कि मै लखनऊ विश्वविद्यालय का ग्रेजुएट हूँ और एक सफल अभिनेता के रूप में मै अनेक स्वर्ण-पदक प्राप्त कर चुका हूँ!

(सब हँस पड़ते है। राजेश लज्जित हो जाता है।)

प्रतिमा—**(अपनी पराजय को जय में बदलने की आशा से आखिरी दाँव-सा लगाती हुई)** जीजाजी! तो फिर आपने जो कुछ मुझसे कहा था वह केवल अभिनय ही था?

हरीश—**(कृत्रिम गम्भीरता से)** नही, प्रतिमा! कल ही हम शादी कर लेगे। दोनो बहने एक साथ रहें, इससे अच्छा और क्या हो सकता है! **(नीलिमा की ओर मुड़कर)** ठीक है न नीलिमा! तुम्हारा हाथ ही बंटेगा!

(नीलिमा सर हिलाकर मुस्कराती है। उसके साथ रजनी, राजेश और हरीश भी मुस्कराते है। प्रतिमा का चेहरा लज्जा से लाल हो जाता है। वह दोनों हाथों से मुँह छिपाकर अन्दर की ओर भागती है। सब जोर से हँस पड़ते है। यवनिका गिरती है।)

पाप का पुण्य

पात्र--सुरेश--एक बेकार ग्रेजुएट, अवस्था ३० वर्ष।
मीरा--सुरेश की पत्नी, अवस्था २५ वर्ष।
रेनु--सुरेश की पुत्री, अवस्था ७ वर्ष।
मुनीमजी, स्त्री-पुरुष, बच्चे आदि।

स्थान--सुरेश की कोठरी।

समय--दिन का तीसरा पहर।

(कोठरी बहुत साधारण है। दीवारें इतनी गन्दी हैं कि यह अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता कि वे कभी पुती भी होंगी। सामने की दीवार के दाहिने छोर पर एक द्वार है जो छोटे-से बरामदे में खुलता है। द्वार खुला है और बरामदे का कुछ भाग दिखाई पड़ रहा है। कोठरी में दाहिनी दीवार से सटी एक चारपाई पड़ी है जिसमें केवल तीन पैर हैं और चौथे पैर की कमी ईंटें लगाकर दूर की गई है। सामने की ओर बाँय कोने में दो टूटे बक्स रखे हैं। वहीं पर एक टूटा हुआ स्टूल पड़ा है। बाईं ओर का द्वार बाहर जाने के लिए है। चारपाई पर एक फटी-सी गन्दी दरी बिछी है। बरामदे में अलगनी है जिस पर सुरेश की कमीज तथा रेनु की फ़्राक फैली हुई है। बरामदे का जो भाग दिखाई नहीं पड़ता है उसमें चूल्हा, चौका, नल आदि सब कुछ है। जिस समय पर्दा उठता है उस समय कोठरी में कोई नहीं है। मीरा बरामदे के अदृश्य भाग में बैठी बर्तन धो रही है। बर्तनों की आवाज आ रही है।)

मीरा—(अन्दर से ही) रेनू! रेनू! अरे, कहाँ मर गई जाकर!

रेनु—(नेपथ्य से) मैं कान्ता के यहाँ हूँ माँ।

मीरा—(अपनी गन्दी धोती से हाथ पोछती अन्दर आकर) अरे, अब आएगी भी कि वहीं से बातें बनायेगी?

रेनु—आती हूँ।

(एक क्षण बाद ही रेनु का प्रवेश। उसकी फ़्राक भी फटी और गन्दी है।)

मीरा—आज क्या भूखी ही रहेगी दिन भर? जा रोटी खा ले।

रेनु—मैं नही खाऊँगी।

मीरा—क्यों?

रेनु—भूख नही है।

मीरा--(**रेनु का कान पकड़कर**) भूख नही है ! **बोल, क्या** आज भी कान्ता के यहाँ खाया है ?

(**रेनु नकारात्मक सिर हिलाती है।**)

मीरा--(**क्रुद्ध होकर एक तमाचा मारती हुई**)झूठ बोलती है ! बोल, खाया था या नही ?

(**रेनु की आँखों में आँसू आ जाते हैं पर वह रोती नहीं। भीत दृष्टि से माँ की ओर देखकर वह दृष्टि नीची कर लेती है और स्वीकारात्मक सिर हिलाती है।**)

मीरा--(**कठोर स्वर में**) क्यो खाया ?

रेनु--(**भीत स्वर मे**) मै मना करती थी पर··· ।

मीरा--(**बीच मे ही**) मै सब समझती हूँ। (**दूसरे गाल पर तमाचा मारकर**) बोल, अब तो नही खायेगी किसी के यहाँ ?

रेनु--(**चोट से तिलमिलाकर सिसकते हुए**)तू तो हमे मारती ही रहती है। ऊँ··· ऊँ·· ऊँ··· ऊं। मैं·· मै नहीं खाती थी··· ऊँ ··· ऊँ·· कान्ता··· कान्ता ने कहा··· आज दिवाली··· दिवाली ··· है । ऊँ ··· ऊँ ··· ऊँ ··· । मिठाई ··· मिठाई ·· खा ले। उसन··· उसने··· ·· कहा··· तेरे··· तेरे यहाँ तो मिठाई··· नही आएगी सो··· ·· सो··· मैने खा ली। ऊँ··· ·· ऊँ!!

मीरा--(**चारपाई पर बैठकर उसे अपने समीप बिठाते हुए**) आज दिवाली है। तेरे बाबूजी को आज काम मिल जायगा। वे आज मिठाई लायेगे, खीले लायेंगे, खिलौने लायेंगे। समझी ? देख, दूसरो के यहाँ नही खाना चाहिए।

रेनु--(**प्रसन्न होकर**) अब नही खाऊँगी। माँ, क्या आज बाबूजी सब कुछ लायेंगे ?

मीरा—हाँ !

रेनु—तू तो रोज ही ऐसा कहती है।

मीरा—नही बेटी, आज जरूर लायेंगे। आज उन्हे काम मिल जायगा।

रेनु—क्यों ?

मीरा—आज दिवाली है न !

रेनु—**(खड़ी होकर प्रसन्नता से)** सच ? तब तो खूब मजा आएगा। गुब्बारे और पटाखे भी लायेंगे न !

मीरा—हाँ। अच्छा, जा जरा ननकू को तो बुला ला। जाने धोबी के यहाँ गया भी था या नही।

(रेनु बाहर चली जाती है। मीरा बरामदे से कमीज और फ़्राक ले आती है और उन्हें ठीक से तहाकर सन्दूक में रखती है। बाहर से रेनु आती है।)

मीरा—ननकू नही आया ?

रेनु—वह कहता है धोबी ने कपडे नहीं दिए।

मीरा—क्यो ? उसने कहा नही कि आज दिवाली है ? त्योहार के दिन भी क्या गन्दे कपडे ही पहने जायँगे !

रेनु—वह कहता है कि जब तक पिछले पैसे नही मिलते तब तक कपड़े नही देंगे।

मीरा—**(झुँझलाकर)** पैसा, पैसा, पैसा ! समझता है हम पैसा नही देंगे ! नीच कही का !

रेनु—माँ ! आज उसका पैसा दे देना। आज तो बाबूजी पैसा लायेंगे न !

मीरा—**(रेनु के कथन को जैसे सुना ही नहीं)** जैसे पैसा ही सब कुछ है इस दुनियां मे !

(वह नीचेवाले सन्दूक से एक गुलाबी रंग का स्वेटर निकालती है। फिर ठीक से तहाकर उसे उलट-पुलट कर देखती है।)

मीरा--(स्वेटर रेनु को देकर) ज, इसे कान्ता की माँ को दे आ। और हाँ, कहना पैसे माँगे है।

(रेनु बाहर जाती है। मीरा क्लान्त-सी होकर चारपाई पर बैठ जाती है। बाहर से सुरेश आता है। वह कुर्ता-पाजामा पहने है। पाजामे में घुटनों के समीप पैबन्द लगे है। कुर्त्ता पीठ पर कुछ-कुछ फटा है। चप्पल भी टूटी है। चेहरे पर थकान, निराशा और बेबसी के चिह्न है। उसे देखकर मीरा चारपाई से उठकर खड़ी हो जाती है। सुरेश चप्पल एक कोने में उतारकर चारपाई पर बैठ जाता है। मीरा उसकी ओर विषादपूर्ण दृष्टि से देखती रहती है। कुछ पूछने का न तो उसमें साहस है और न आवश्यकता ही है।)

सुरेश--(एक दीर्घ निःश्वास छोड़कर) आज भी बेकार ही दौड़ हुई।

(सुरेश मीरा की ओर देखता है। वह चाहता है कि मीरा कुछ पूछे किन्तु वह कोई प्रश्न न कर स्टूल उठाकर चारपाई के समीप डाल देती है और उस पर बैठ जाती है। उसकी आँखों में अश्रु छलछला रहे है।)

सुरेश--हमसे अच्छे तो जानवर है। इस जिन्दगी से तो मौत अच्छी है।

मीरा--(**मन्द स्वर में**) त्योहार के दिन क्यों ऐसी-वैसी बाते करते हो! भगवान् पर भरोसा रखो।

सुरेश--(**बीच मे ही भयंकर हंसी हंसकर**) भगवान् को शैतान ने मार डाला। आज शैतान ही भगवान् है।

मीरा--कैसी बाते करते हो! काम करनेवाले के लिए काम

की कमी नही है। आज नही तो कल और कल नहीं तो परसों, काम मिल ही जायगा।

सुरेश--कल-परसों की आशा मे तो दस महीने निकल गए। इस छँटनी की वेदी पर न जाने कितने जीवन बलि हुए होंगे और सरकार.... ।

(सुरेश का वाक्य अपूर्ण रह जाता है। बाहर से रेनु आती है। उसके दाहिने हाथ में स्वेटर और आँखों में आँसू है।)

मीरा--(**व्यग्रता से**) क्यो, क्या हुआ? स्वेटर दिया नहीं कान्ता की माँ को ?

रेनु--(**रुद्ध कंठ से**) उन्होंने नही लिया। कहती थी, देहाती बिनाई है, हमारी ऊन खराब कर दी, ऊन के पैसे दो।

सुरेश--(**रेनु से स्वेटर लेकर खोलते हुए रूखे स्वर में**) यह देहाती बिनाई है! कहा नही तूने कि पहनने की भी तमीज है?

मीरा--(**स्वेटर लेकर**) क्यो बात का बतगड कर रहे हो! मैं जाकर समझाती हूं। मेहनत के पैसे मिल जायँगे तो त्योहार के दिन घर मे दो दिए तो जल जायँगे।

सुरेश--(**उठने का उपक्रम करती हुई मीरा के हाथ से स्वेटर छीनकर तीव्र स्वर मे**) कोई जरूरत नही है जाने की। यह स्वेटर हमारी रेनु पहनेगी। (**रेनु का हाथ पकड़कर उसे पहनाते हुए**) आ तो बेटी ! देखँ कैसा लगता है तुझ पर।

मीरा--यह क्या पागलपन कर रहे हो? स्वेटर खराब हो जायगा तो ऊन के पैसे देने पडेगे।

सुरेश--पैसे ही तो लेगी, किसी की जान तो नही लेंगी।

मीरा--बहुत पैसेवाले ही तो हो न! मेरी बात मानते तो आज यह दिन क्यों देखना पडता! कण्ट्रोल के दफ्तर में रहकर भी कुछ

नहीं किया! अपने और साथियों को देखो। दस-दस, बीस-बीस हजार कमाए हैं सभी ने! तुम अपने आदर्श के पीछे ही पडे रहे। **(गला भर आता है)** न ईमानदारी का ढोल पीटते और न आज भूखों मरते।

सुरेश—**(मन्द स्वर में)** मुझे क्या मालूम था कि सच्चाई और ईमानदारी का फल यह होगा!

रेनु—**(जैसे भूली बात याद आ गई हो)** बाबूजी! आज गुब्बारे, पटाखे और खिलौने नही लाए। माँ तो कह रही थी··· ।

मीरा—**(डॉटकर)** चुप रह! जा, बाहर खेल जाकर।

(रेनु सहम जाती है। वह कभी माँ और कभी पिता की ओर देखती है। फिर धीरे-धीरे बाहर जाने का उपक्रम करती है।)

सुरेश—यहाँ आओ रेनु। **(रेनु के समीप आने पर उसे गोद में बिठाकर)** तुम्हे गुब्बारे चाहिए?

रेनु—**(डरते हुए)** माँ ने कहा था··· ।

सुरेश—ठीक है। माँ ने ठीक ही कहा था बेटी। और क्या चाहिए?

रेनु—मिठाई, पटाखे, खिलौने और·····और गुडिया के कपडे भी तो फट गए हैं बाबूजी! आज दिवाली है। उसके लिए अच्छे-अच्छे कपड़े चाहिए। तब देखूँगी, कान्ता अपने गुड्डे से उसका ब्याह कैसे नही करती!

सुरेश—मैं सब कुछ लाऊँगा बेटी। जाओ, अब खेलो जाकर।

(रेनु उछलती हुई बाहर चली जाती है।)

सुरेश—मेरी बेबसी का दण्ड बिचारी रेनु को क्यों मिले! मीरा, तुम्ही बताओ, क्या उसे कान्ता की ही तरह खाने-पीने और खेलने

का अधिकार नही है? हम लोग भूखे और नंगे रह सकते हैं लेकिन वह।.....।

(बाहर से मुनीमजी आते हैं। मीरा खड़ी हो जाती है। मुनीम जी स्टूल पर बैठ जाते हैं।)

मुनीमजी—पैसे का कुछ प्रबन्ध हुआ सुरेश बाबू?

सुरेश—नही।

मुनीमजी—तब कैसे काम चलेगा? आज-कल करते-करते होली से दिवाली आ गई। सेठजी नाराज हो रहे थे। आज किराया माँगा है।

सुरेश—यहाँ घर मे दिया जलाने के लिए दो पैसे नही है और तुम किराया माँगते हो!

मुनीमजी—क्या करूँ साहब! आठ महीने का किराया चाहिए। सेठ जी ने कहा है कि आज दिवाली है, नए बही-बस्ते होंगे; पिछला सब किराया अदा हो जाना चाहिए।

सुरेश—**(तीव्र स्वर में)** कह देना अपने सेठ से कि मेरे घर में सोने की खान नही है।

मुनीम जी—**(कठोर स्वर में)** तो मकान छोड़ दीजिए।

सुरेश—क्या सरकार सडको पर रहने देगी!

मुनीमजी—यह आप जाने और सरकार जाने। हमारे घर मे रहोगे तो किराया देना ही पड़ेगा।

सुरेश—तो हराम में कौन रहता है? दे देगे किराया। क्या हमें लफंगा समझ रखा है जो किराया लेकर भाग जायगे?

मुनीमजी—मै यह सब कुछ नही सुनना चाहता। या तो चार सौ दीजिए या फिर बोरिया-बिस्तर उठाइए।

मीरा—**(धीमे स्वर में)** बिना पैसा लिये चले जाने दोगे?

मुनीमजी—हाँ। जितनी रकम डूबेगी उससे चौगुनी पगड़ी में मिल जायगी! बोलो, बुलाऊँ मजदूर?

सुरेश—(**क्रुद्ध होकर**) क्या बकते हो? मैं इतना मूर्ख नहीं हूँ जितना तुम समझते हो।

मुनीमजी—तब मुझे खुद सामान बाहर फेकना पड़ेगा।

सुरेश—अगर हिम्मत है तो लगाओ हाथ।

(सुरेश खड़ा होकर कुर्त्ते की बाँहें समेटने लगता है। मुनीम भी खड़े हो जाते हैं।)

मीरा—(**बीच में आकर**) यह क्या करते हो? (**मुनीमजी की ओर मुड़कर**) मुनीमजी! आज त्योहार का दिन है। हम वैसे ही बहुत दुखी हैं; हमारे घावों पर नमक न छिड़को। जाओ, हमें कुछ दिन की मोहलत और दो। (**आँचल पसारकर रुद्ध कंठ से**) मैं दया की भीख माँगती हूँ।

सुरेश—(**मीरा के गाल पर जोर से तमाचा मारकर**) खबरदार, जो भीख के लिए हाथ फैलाये। इन जानवरों के आगे हाथ फैलाने से तो अच्छा मर जाना है।

मुनीमजी—हाँ, मैं तो जानवर हूँ ही पर सेठजी देवता हैं। (**मीरा की ओर मुड़कर मुस्कराते हुए**) उनसे जाकर भीख माँगो तो वे शायद किराया माफ कर दें और साथ में·····।

सुरेश—(**चीखकर**) इससे पहले कि मैं तेरा गला घोंट दूँ। निकल जा यहाँ से कमीने कुत्ते।

मुनीमजी—(**सहमकर द्वार की ओर बढ़ते हुए**) हमारा पैसा रात तक पहुँच जाना चाहिए।

सुरेश—(**आगे बढ़कर**) ले जाना कल आकर अपना पैसा।

(मुनीमजी बाहर चले जाते हैं। सुरेश भी चप्पल पहनने लगता है।)

मीरा—तुम कहाँ चले?

सुरेश—जा रहा हूँ परमात्मा की खोज में।

मीरा—**(घबराकर)** परमात्मा की खोज मे?

सुरेश—हाँ। पैसा ही परमात्मा है आज के युग मे!

मीरा—दिन भर के भूखे हो। खाना तो खा लो।

सुरेश—**(रूखी हंसी हँसकर)** खाना! जौ की रूखी रोटी और नमक को खाना कहती हो मीरा! हम भी इन्सान है। हमें भी मेवा चाहिए, मिष्ठान्न चाहिए, फल चाहिए, दूध चाहिए, मक्खन चाहिए। और आज तो दिवाली है! समझी?

(सुरेश विद्युत्वेग से बाहर चला जाता है। मीरा आश्चर्य से उस ओर देखती रहती है। बाहर से रेनु का प्रवेश।)

रेनु—बाबूजी सामान लेने गए?

(मीरा उत्तर नहीं देती; चारपाई पर बैठकर सिसकने लगती है। रेनु स्टूल पर बैठ जाती है।)

रेनु—तू रोती क्यो है माँ?

(मीरा सिसकती रहती है।)

रेनु—**(उसके समीप बैठकर)** माँ! अब मै कुछ नही माँगूँगी। तू रो मत। मुझे मिठाई, खिलौने, पटाखे कुछ नहीं चाहिएँ।

मीरा—**(रेनु को हृदय से लगाकर)** मेरी बेटी·····! रेनू! रेनू!! **(रेनु भी रोने लगती है।)**

मीरा—तू न रो मेरी बेटी। रोने के लिए हम क्या कम है! चुप रेनू। चुप हो जा·····चुप मेरी रानी बेटी, चुप।

(मीरा संयत हो जाती है। रेनु भी चुप हो जाती है। बाहर से दो अधेड़ पड़ोसिनें आती हैं।)

मीरा—(**खड़ी होकर**) आइए बैठिए।

(रेनु फर्श पर, मीरा स्टूल पर और पड़ोसिनें चारपाई पर बैठ जाती हैं।)

पहली पडोसिन—कमरा पुताया नही बहू !

दूसरी पडोसिन—त्योहार पर भी सफाई नही करवाई !

मीरा—(**मन्द स्वर में**) वे होली पर पुताने के लिए कह रहे थे।

पहली पडोसिन—दुनियाँ दिवाली पर पुतवाती है और तुम··· ·!

दूसरी पडोसिन—(**बीच ही में**) रहने भी दो बहन ! सुविधा नही होगी बिचारो को। महीनो से बेकार है बिचारा।

पहली पडोसिन—ऐसी बेकारी भी क्या ! पचासों काम है दुनियाँ मे। भगवान् ने हाथ-पैर दिए है तो काम की क्या कमी ! नौकरी नही मिलती तो मजदूरी तो कही नही गई है !

दूसरी पडोसिन—क्यो त्योहार के दिन कलह करती हो ? (**मीरा की ओर मुड़कर**) इनकी बातों का बुरा न मानना बहू। हाँ, यह तो बताओ कि कितने दिए आए है तुम्हारे यहाँ ?

(मीरा उत्तर नहीं देती। वह सिर झुका लेती है।)

रेनु—(**चपलता से**) बाबूजी गए है लेने । पूरे सौ लायेंगे।

पहली पडोसिन—वस ! मेरे यहाँ तो हजार आए है, हजार ! मैं तो मना भी करती थी लेकिन वे नहीं माने। कहने लगे त्योहार रोज थोडे ही आता है।

दूसरी पडोसिन—मेरे यहाँ भी हजार आए है । हर चीज में तो आग लगी है। तेल, रुई, खील, खिलौने सभी तो सोने के भाव

बिक रहे है। फिर भी वे सेरो खील-खिलौने ले आए। ठीक भी है। त्योहार पर सेरो तो नेगी-लगायतो को ही बॉटना पड़ता है!

रेनु—मेरे यहाँ भी सब कुछ आएगा। गुडिया के लिए·····।

मीरा—(**बीच में ही कठोर स्वर मे**)चुप होती है या नही? जब देखो तब बीच में बोलने लगती है!

पहली पड़ोसिन—क्या हुआ, बच्ची ही तो है।

मीरा—बाते तो पुरखो-जैसी करती है।

(**रेनु खिसियाकर नाखून से फर्श कुरेदने लगती है।**)

दूसरी पड़ोसिन—कितना मीठा आया है बहू?

मीरा—(**तीखे स्वर मे**)दूसरों की घर-गृहस्थी की बातो को जानने की क्या जरूरत है आप लोगो को? (**खड़ी होकर**) कितने दिए आए है, कितनी खीले आई है, कितना मीठा आया है, कमरा पुता या नही? जाइए, जाकर दिवाली मनाइए। हमारे लिए आज भी अमावस ही है।

पहली पड़ोसिन—(**उठते हुए**) चलो बहन चलें। इनका दिमाग तो सातवें आसमान पर है।

दूसरी पड़ोसिन—(**उठकर**)शायद आदमी को काम मिल गया है!

(दोनों पड़ोसिनें बाहर जाती है। मीरा सन्दूक से फ़ाक निकाल कर रेनु की फ़ाक बदलती है। नेपथ्य से आवाजे आती है। मीरा द्वार की ओर देखती है। सुरेश का प्रवेश। उसका कायाकल्प-सा हो गया है। वह नए जूते, नई कमीज और नया पैंट पहने है। उसके हाथ में कई बड़े-बड़े बंडल है। डोर से बंधे हुए कई बड़े गुब्बारे भी है। मीरा उधर आश्चर्य से देखती है। रेनु तालियाँ बजाती है। सुरेश के पीछे ही दो मजदूर आते है। उनके सिरों पर बड़ी-बड़ी झल्लियाँ है जिनमें तेल का टिन, रुई, बिए, फल, मिठाई, खीलें, खिलौने आदि

हैं। सुरेश गुब्बारे रेनु को देकर बंडल चारपाई पर रख देता है और फिर सँभलकर झल्लियाँ उतरवाता है, फिर मजदूरों को मजदूरी देता है। मजदूर चले जाते हैं। बाहर से कुछ पुरुष, स्त्रियाँ और बच्चे आते हैं। वे आश्चर्य से कभी सुरेश की ओर और कभी सामान की ओर देखते हैं। मीरा बरामदे में चली जाती है। रेनु प्रसन्न है।)

एक पुरुष—आज तो ठाठ ही बदल गए सुरेश बाबू! क्या कहीं काम मिल गया है?

दूसरा पुरुष—कोई बडा काम मिला होगा!

एक स्त्री—और शायद तनखा पेशगी मिल गई होगी!

दूसरी स्त्री—**(हाथ मटकाकर)** अरे, लॉटरी निकली होगी लॉटरी!

(सुरेश की मुख-मुद्रा से ज्ञात हो रहा है कि उसके धैर्य का बाँध टूटनेही वाला है। बच्चे लालायित दृष्टि से गुब्बारों और मिठाई की ओर देख रहे हैं। स्त्रियों की जिज्ञासापूर्ण दृष्टि बडलों पर है।)

एक अधेड़ पुरुष—समय फिरते देर नही लगती भाई!

एक स्त्री—आज लक्ष्मीजी की कृपा हुई है, लक्ष्मीजी की!

एक युवक—आज तो मुह मीठा करायेगे सुरेश बाबू!

अधेड़ पुरुष—अरे, पूरी दावत देंगे, पूरी दावत! मै तो पहले ही कहता था कि धीरज का फल मीठा होता है। तकलीफ भी तो उठाई थी बिचारे ने! आज भगवान् ने सुन ली। अच्छा सुरेश बेटा! यह जूता कितने मे लिया है? और यह कपडे···- हो न हो यह मगनलाल एण्ड सन्स की दूकान के है। अरे! मैंने इन बडलो का तो देखा ही नही था! इनमे क्या है बेटा? बहू की साडी होगी!

सुरेश—**(पागलों की तरह चीखकर)** निकल जाओ सब लोग यहाँ

से। आज आए हो बातें बनाने! आज से पहले क्या मर गए थे आप लोग? कभी यह भी पूछने आए थे कि हमने कुछ खाया है या नहीं, कभी यह भी देखने आए कि·····। तब आप लोग दूर भागते थे जैसे हम भूत है। आप डरते थे कि कहीं हम कुछ माँग न बैठें। जाइए, हमें आपकी, आपकी झूठी हमदर्दी की कोई जरूरत नही है। दूर हो जाइए मेरी आँखो से। निकल जाइए यहाँ से।

(सुरेश क्रोध से काँपने लगता है। मीरा बरामदे से झांकती है। रेनु भयभीत है। लोग धीरे-धीरे खिसकने लगते है। सबके जाने के बाद सुरेश द्वार अन्दर से बन्द कर लेता है। मीरा अन्दर आती है।)

मीरा--क्या हो गया था तुम्हें?

सुरेश--मुझे ऐसे लोगो की शक्ल से घृणा है। धूर्त, पाजी, नीच कही के!

मीरा--इतना सब सामान कहाँ से लाए?

सुरेश--बाजार से। **(बडल खोलकर साड़ी, ब्लाउज, पेटीकोट, फ़ाक़ आदि निकालकर)** ये तुम्हारे और रेनु के लिए है। जल्दी से कपड़े बदल लो। आज हम घूमने चलेंगे।

मीरा--**(साड़ी लेकर)** इतनी कीमती साड़ी के लिए पैसा कहाँ मिला? मेरी तो समझ मे नही आता कि मै जाग रही हूँ या सपना देख रही हूँ।

सुरेश--**(हँसकर)** आज हमारा सपना सत्य बन गया है मीरा। **(जेब से सुन्दर मनीबेग निकालकर)** यह देखो! संसार के सभी सुखों की कुंजी आज मेरी जेब में है।

मीरा--पर··· पर··· ··यह मिला कहाँ से·····? **क्या·····?**

सुरेश--(**हँसकर**) डरो मत। मैंने इसे प्राप्त करने के लिए किसी का गला नही काटा है, सिर्फ जेब काटी है, जेब!

मीरा--(**घबराहट में साड़ी हाथ से गिर जाती है**) जेब काटी है? यह तो पाप है। मुझे यह कपड़े आदि कुछ नही चाहिए। इससे तो नंगा और भूखा ही रहना अच्छा है!

सुरेश--तुम पागल हो। पाप-पुण्य की परिभाषा मुझसे सुनो। ससार मे सबसे बड़ा पाप है गरीबी। पैसा ही पुण्य है, धर्म है। जिसके पास पैसा नहीं वही पापी है और पैसेवाला ही पुण्यात्मा और धर्मात्मा है। समझी? पुण्य कमाने के लिए सभी जेबे काटते है, चोरी करते है, खून करते है।

मीरा--करने दो। हमे ऐसा पैसा नही चाहिए।

सुरेश--पैसा परमेश्वर है मीरा। उसका निरादर न करो। अब हमें उसकी प्राप्ति का सरल मत्र मिल गया ह। मूर्ख लोग साधन पर विचार करते है, चतुर लोग केवल साध्य देखते है। तुम ठीक कह रही थी मीरा। काम करनेवाले के लिए काम की कमी नही है। बेकार के लिए कोई-न-कोई कार्य निकल ही आता है। अभी तक मै अन्धा था, आज मेरी आँखे खुल गई है। आज मै खुश हूँ, बहुत खुश हूँ। आज वास्तव में दिवाली है। खुशियाँ मनाओ, दीपक जलाओ और (**फुलझड़ियों में आग लगाकर प्रसन्नता से उछलता हुआ**) पटाखे छोडो। (**रेनु भी उछलती है**) हा·····हा ···· हा! आज दिवाली है। दिवाली ·····अपने जीवन की प्रथम दिवाली·····! हा! ·····हा!!· ···हा!!!

(सुरेश और रेनु आनन्द-विभोर होकर उछलते-कूदते है। मीरा उदास भाव से उन्हें देखती रहती है। उसकी आँखों में अश्रु है। धीरे-धीरे यवनिका गिरती है।)

जावली-विजय

पात्र—जीजाबाई—शिवाजी की माता।
शिवाजी—प्रसिद्ध मरहठा।
रघुनाथ—शिवाजी का दूत।
हनुमन्त राव—जावली की रानी का सम्बन्धी।
रानी—जावली की विधवा रानी।
सैनिक, प्रहरी आदि।

उपक्रम

स्थान—पूना में जीजाबाई का कक्ष।

समय—सन्ध्या।

(एक चौकी पर जीजाबाई बैठी हैं। शिवाजी चिन्तित मुद्रा में टहल रहे हैं।)

शिवाजी—**(सिर उठाकर)** माँ·····!

जीजाबाई—मैं कुछ सुनना नहीं चाहती। भवानी, दादा और मुझे साक्षी करके तूने क्या शपथ खाई थी? क्या भूल गया है तू कि तूने विदेशियों के विरुद्ध खग उठाने का, समस्त महाराष्ट्र को एकता के सूत्र में बाँधने का प्रण किया था? स्वतन्त्र हिन्दू-राष्ट्र की स्थापना का स्वप्न क्या स्वप्न ही रह जायगा?

शिवाजी—**(आवेशपूर्ण स्वर में)** मुझे सब कुछ याद है माँ, सब कुछ याद है। आज भी मेरी खग का लोहा विदेशी मानते हैं, आज भी स्वतन्त्र हिन्दू-राष्ट्र का स्वप्न मैं देखता हूँ।

जीजाबाई—स्वप्न देखने और उसे सत्य करने की चेष्टा में महान् अन्तर है शिवा! कर्म से ही फल मिलता है। तू अपने कर्म को भूल गया है। यही तेरा अपराध है।

शिवाजी—**(दूसरी चौकी पर बैठकर)** भवानी की कृपा, दादा कोणदेव के आशीर्वाद, आपके चरणों का प्रताप तथा अपने साथियो के सहयोग से मैंने सिंहगढ़, रोहिन्दा, चकन और तोरण के दुर्गों पर अधिकार किया। दादा कोणदेव के देहावसान से प्रगति में कुछ शिथिलता अवश्य आ गई थी पर आपकी दया से वह भी शीघ्र ही दूर हो गई और·····?

जीजाबाई—**(बीच में ही हँसकर)** जानती हूँ तू क्या कहेगा यही न कि पुरन्दर और सूया के दुर्गों पर अधिकार किया? ठीक है,

किन्तु तेरे मार्ग का कंटक आज भी सिर उठाये तुझे चुनौती दे रहा है।

शिवाजी—आपका आशय·····?

जीजाबाई—(**बीच में ही**) जावली से है। जावली आज भी अपराजित है। जब तक तू जावली के दुर्ग पर अधिकार नहीं करता तब तक तेरा स्वप्न, स्वप्न ही रहेगा। सामरिक दृष्टि से उसका बहुत महत्त्व है। उसे दक्षिण का द्वार कहा जा सकता है।

शिवाजी—जानता हूँ। यह भी जानता हूँ कि जब तक उस पर अधिकार नहीं होता तब तक दक्षिण और दक्षिण-पश्चिम की ओर मैं बढ़ ही नही सकता।

जीजाबाई—अज्ञान मे हुआ अपराध एक बार क्षम्य हो सकता है शिवा, पर तूने तो जानकर भूल की है। सामरिक महत्त्व के अतिरिक्त बीजापुर राज्य को जावली ही से कुशल सैनिक मिलते है। बीजापुर का शासक जावली के मोरों को हम भोसलो के विरुद्ध भड़काता रहता है, तू यह भी जानता है।

शिवाजी—सब कुछ जानता हूँ माँ। मैं उचित अवसर की ताकमे हूँ।

जीजाबाई—(**कठोर स्वर में**) अवसर की प्रतीक्षा कायर करते है, वीर पुरुष अवसर की सृष्टि करते है। तू वीर है फिर भी आठ वर्ष हो गये और जावली·····।

शिवाजी—(**बीच में मन्द स्वर में**) इसी बीच मे पिताजी बन्दी·····।

जीजाबाई—(**क्रुद्ध स्वर में**) उनके बन्दी होने का बहाना नही चलेगा। यदि तू चाहता तो आठ वर्षों में आठ बार जावली पर अधिकार कर सकता था।

शिवाजी—मैं शान्तिपूर्ण उपायों से जावली लेना चाहता हूँ। व्यर्थ रक्तपात—और वह भी अपने ही भाइयों का—मुझे अरुचिकर है। यदि मोर

लोग देश के हित के लिए अपने स्वार्थों का त्याग कर दे तो ठीक ही है।

जीजाबाई—तेरे मुख से ऐसे शब्द सुनकर मुझे लज्जा आती है। क्या तू समझता है कि वे स्वयं आकर तुझे जावली दे देंगे? वे लोग अपने को चन्द्रगुप्त मौर्य का वशज समझते हैं। हम भोसलों को तो वे चरणो का दास समझते हैं।

शिवाजी—तब क्या रक्तपात के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नही? यदि ऐसा है तो कल ही आक्रमण करूँगा और जावली-पतन के पश्चात् ही आपको मुख दिखाऊँगा। **(उठकर माँ के चरणों पर झुकते हुए)** आशीर्वाद दीजिये कि मै अपने अभियान में सफल रहूँ।

जीजाबाई—**(उन्हें अपने समीप बिठाते हुए)** कूटनीति के अभाव में वीरता अपंग हो जाती है। राजपूतों का पतन ही अन्धी वीरता के कारण हुआ। हमें उनकी भूल से शिक्षा लेनी है। जावली पर अधिकार शस्त्र बल से नही, बुद्धि-बल से होगा।

शिवाजी—आदेश दो माँ!

जीजाबाई—हमें कूटनीति से काम लेना है। व्यर्थ का रक्तपात मै भी नही चाहती।

शिवाजी—यदि दौलतराव जीवित होता तो सब कुछ किया जा सकता था। अब तो उसकी विधवा ने यशवन्तराव को गोद लिया है और हनुमन्तराव की सहायता से स्वयं शासन-कार्य करती है। यदि हमने छल छद्म से कार्य लिया ता लोग यह न कहें कि शिवा ने नारी को धोखा दिया।

जीजाबाई—तुझसे कितनी बार कह चुकी हूँ कि साधन मे नही, साध्य में विश्वास रख। कोरी आदर्शवादिता ही हमारे पतन का कारण है। हमारा उद्देश्य महान् है, उसकी पूर्ति के लिए कोई भी साधन अपनाये जा सकते है।

शिवाजी—जो आज्ञा !

जीजाबाई—कल रघुनाथ कोर्डे को हनुमन्तराव के पास दूत बना कर भेज।

शिवाजी—सन्देश क्या भेजूँ ?

जीजाबाई—सन्देश ? आ, मैं तुझे सब योजना बताती हूँ।

(दोनों मन्द गति से द्वार की ओर बढ़ते हैं। धीरे-धीरे यवनिका गिरती है)

——

मुख्य दृश्य

स्थान—जावली-दुर्ग का एक कक्ष।

समय—सन्ध्या का अवसान।

(कक्ष में दो चौकियों पर हनुमन्तराव और रानी चिन्तित मुद्रा में बैठे हैं। एक रिक्त चौकी और है जो अपेक्षाकृत छोटी है।)

रानी—जावली की रक्षा कैसे होगी ?

हनुमन्तराव—तुम चिन्ता न करो बहन।

रानी—यशवन्त अभी अनुभवहीन है। तुम्हारा ही भरोसा है भैया।

हनुमन्तराव—मुझ पर विश्वास रखो। भगवान् सब भला करेंगे। जब तक एक भी मोर जीवित रहेगा तब तक कोई जावली की ओर दृष्टि उठाकर भी नहीं देख सकता।

रानी—मौर्य-कुल के पुरातन गौरव पर कलंक न लगने पाये, यही मैं चाहती हूँ।

हनुमन्तराव—हमारे पूर्वज देवतुल्य श्री चन्द्रगुप्त मौर्य ने अकेले ही अपने खंग के बल पर महान् साम्राज्य की स्थापना की थी तो क्या हम ···· हम अपनी खंग से जावली की रक्षा भी नहीं कर सकते !

रानी—अपने सैनिकों के साहस, शौर्य और पराक्रम पर मुझे विश्वास है, किन्तु ······ किन्तु शिवा शस्त्र पर उतना निर्भर नहीं रहता जितना छल-प्रपंच पर। मुझे भय है कि कहीं वह पुरन्दर

की भाँति जावली पर भी·····!

हनुमन्तराव—(**बीच में ही**) डरो मत बहन। छल का उत्तर छल से दिया जा गा। चाणक्य की कूट-नीति अभी मरी नही है।

(**प्रहरी का प्रवेश**)

प्रहरी—(**सादर झुककर**) शिवाजी का दूत रघुनाथ बल्लल कोर्दे दर्शन की अनुमति चाहता है ।

रानी—शिवाजी का दूत ··· ·! लक्षण शुभ नही लगते।

हनुमन्तराव—आशका मत करो बहन। तुम जाओ अपने कक्ष मे। दूत से मै यही बात करूँगा। (**प्रहरी को ओर मुख करके**) जाओ, दूत को सादर ले आओ।

(**प्रहरी का प्रस्थान**)

रानी—मै जा रही हूँ। सावधानी से बात करना।

हनुमन्तराव—(**हँसकर**) ऐसा ही होगा।

(**रानी का प्रस्थान। दूसरे द्वार से रघुनाथ का प्रवेश।**)

रघुनाथ—श्रीमान् के चरणो मे प्रणाम करता हूँ।

हनुमन्तराव—बैठो रघुनाथ। क्या सन्देश है शिवा का?

रघुनाथ—(**छोटी चौकी पर बैठकर**) मैत्री का सन्देश लाया हूँ श्रीमान् जी! हमारे शिवाजी दोनो वशो मे मैत्री-भाव की स्थापना चाहते है ।

हनुमन्तराव—(**व्यंग्य से**) मैत्री समान लोगो मे होती है !

रघुनाथ—(**विनम्रता से**) हमारे शिवाजी उदार है। उन्होने मित्रता का हाथ बढाया है ।

हनुमन्तराव—उस हाथ मे विषाक्त कटार भी है या नही?

रघुनाथ—आप हमारे शिवाजी को नही जानते। उनकी तो इच्छा है कि दोनों वंशो मे अटूट सम्बन्ध हो जाय। इसीलिए·····।

हनुमन्तराव—(**कठोर स्वर में**) इसीलिए ?

रघुनाथ—उन्होने स्वर्गीय श्री दौलतराव की पुत्री के साथ अपने विवाह का प्रस्ताव भेजा है।

हनुमन्तराव—(**क्रोध से काँपता हुआ कठोर स्वर में**) अपनी अवध्यता की ओट मे मेरे धैर्य की परीक्षा न लो दूत। मोरों की कन्या भोसलों के घर जायगी !

रघुनाथ—हमारे शिवाजी महाराज उदार है न।

हनुमन्तराव—वह लुटेरा महाराज कब से हो गया !

रघुनाथ—(**व्यंग्यपूर्वक**) यदि खंग के बल पर राज्य की स्थापना करना, विदेशी आतताइयो का विरोध करना ही लुटेरापन है तो आपके पूर्वज श्री चन्द्रगुप्त··· ?

हनुमन्तराव—(**बीच में ही चौकी से उठता हुआ**) मुझे दूत का बधिक बनने के लिए बाध्य न करो रघुनाथ। जाओ, कहना अपने शिवा से कि मोर-कन्या भोसलो के घर जाने की अपेक्षा आजीवन कुमारी रहना श्रेष्ठ समझती है। यही मेरा अन्तिम उत्तर है।

(**नेपथ्य से कोलाहल का शब्द आता है**)

हनुमन्तराव—(**चौंककर**) यह कोलाहल कैसा ?

(**रघुनाथ उत्तर नहीं देता है। कोलाहल बढ़ता जाता है। हनुमन्तराव खिड़की से बाहर झाँकता है। उसकी पीठ रघुनाथ की ओर है। वह अवसर पाकर उसकी पीठ मे कटार भोंक देता है। रक्त की धार बहने लगती है। हनुमन्तराव के मुख से "वि····श्वास····घात" निकलता है और फिर उसका निर्जीव शरीर लुढ़क जाता है। रघुनाथ 'जयभवानी' का घोष करता है। कुछ सैनिकों के साथ रक्त-रंजित खंग लिए हुए शिवाजी का प्रवेश।**)

शिवाजी—(**प्रसन्न होकर**) योजना सफल हुई रघुनाथ !

हनुमन्त के वध के समाचार ने मोर-सैनिकों को पंगु कर दिया। उन्होंने आत्म-समर्पण कर दिया है। दुर्ग पर अपनी पताका फहरा रही है।

रघुनाथ—सब भवानी का प्रताप है। जय भवानी!

शिवाजी—जय भवानी!!

सैनिक—जय भवानी!!!

(कुछ सैनिक रानी को बन्दी बनाकर लाते हैं।)

शिवाजी—**(क्रुद्ध स्वर में)** इन्हे बाँधने का दुस्साहस किसने किया? खोल दो इनके बन्धन।

(एक सैनिक बन्धन खोलता है।)

सैनिक—क्षमा चाहता हूँ। यशवन्तराव अपने बच्चो को लेकर गुप्त द्वार से भाग गया है।

शिवाजी—**(क्रुद्ध होकर)** और तुम अपनी असावधानी तथा असफलता की सूचना मुझे देने का साहस कर रहे हो! जाओ, पता लगाओ कि वह किधर गया है।

(समस्त सैनिकों का प्रस्थान। वे हनुमन्तराव की लाश भी उठा ले जाते हैं। कक्ष में शिवाजी, रानी और रघुनाथ रह जाते हैं। शिवाजी के संकेत मे रानी बैठ जाती है। शिवाजी और रघुनाथ भी बैठ जाते है।)

रघुनाथ—जावली-पतन का समाचार पूना भेज दिया जाय?

शिवाजी—**(हँसकर)** नही। यह शुभ समाचार मै स्वयं माता जी को सुनाऊँगा।

रानी—**(व्यंग्य से)** अपने पराक्रम की गाथा सुनाओगे उन्हे?

शिवाजी—नही मोरो के शौर्य की!

रानी—छल से दुर्ग पर अधिकार करनेवाले मोरों का शौर्य क्या

जानें! यदि वही देखना था तो खुलकर आक्रमण करते। स्त्रियों की तरह छिपकर आने की क्या आवश्यकता थी?

शिवाजी—यदि बुद्धि-बल से ही विजय मिल जाय तो रक्त-पात से क्या लाभ! मोर लोग जैसे भी हों पर हैं तो अपने ही।

रानी—(**तीव्र स्वर में**) हम क्षत्रिय हैं तो क्षत्रिय धर्म के आदर्शों पर अपने प्राण देना भी जानते हैं; भोसलों की तरह नारी के साथ विश्वासघात नहीं करते। हमारे अस्त्र-शस्त्र शत्रु के वक्ष पर घाव करते हैं, पीठ पर नही।

शिवाजी—भोसले साध्य देखते हैं, साधन नही। हमने महान् उद्देश्य की पूर्ति के लिए खंग उठाई है। जावली मेरे मार्ग का रोड़ा थी। यदि आप अपने हठ को छोडकर हमे सहयोग देती तो इसकी आवश्यकता ही न पडती। हमारी सम्मिलित शक्ति विदेशियों के छक्के छुड़ा देत, और हम सबल महाराष्ट्र की स्थापना का स्वप्न पूरा करते!

रानी—(**व्यंग्य से**) जीवन भर विदेशियो की सेवा करनेवाले पिता का पुत्र सबल महाराष्ट्र का स्वप्न देखता था। (**तीव्र स्वर में**) अपनी साम्राज्य-लिप्सा की पूर्ति के लिये जघन्य साधनो का प्रयोग करते तुम्हे लज्जा नही आती?

शिवाजी—(**गम्भीर स्वर में**) आप भूलती है देवि! मै जो कुछ कर रहा हूँ हिन्दू-धर्म, हिन्दू-जाति तथा हिन्दू-सस्कृति की रक्षा के लिए कर रहा हूँ। मेरा उद्देश्य·····।

रानी—(**बीच में ही**) यह कोरा दम्भ है, दूसरों को छलने का उपाय है। सेवा करनेवाला कभी स्वामी नही बनता। तुम दक्षिण के ही नही समस्त भारत के स्वामी बनना चाहते हो।

शिवाजी—मै भारत के भिन्न-भिन्न अंगो को एकता के सूत्र में बाँधना चाहता हूँ।

(बाहर से एक सैनिक आता है।)

सैनिक—एक कक्ष में एक नवयुवती का मृत शरीर मिला है। उसके वक्ष में खंग घुसा है। कदाचित् किसी सैनिक ने·····!

शिवाजी—**(गरजकर)** किसने यह अपराध किया है? मैं उस पशु के हाथ काट डालूँगा।

रानी—उसकी आवश्यकता नही पडेगी। वह मेरी पुत्री शैली है। उसने आत्महत्या कर ली है। वह नही चाहती थी कि उसका शरीर भोसलो के स्पर्श से अपवित्र हो।

शिवाजी—आपकी पुत्री·····? ओह! मैं!

रघुनाथ—**(बीच में)** धन्य है वह देवी!

शिवाजी—आज विजयी होकर मैं पराजित हूँ। रघुनाथ! जाकर उस देवी के दाह-सस्कार का प्रबन्ध करो।

(रघुनाथ और सैनिक जाते है।)

शिवाजी—देवि! आपकी पुत्री को मेरे कारण आत्महत्या करनी पड़ी, इसके लिए मैं क्षमा चाहता हूँ।

रानी—**(पागलों की तरह हँसकर)** क्षमा····!दक्षिण का शेर एक अबला से क्षमा-याचना कर रहा है; समस्त भारत पर अपनी पताका फहराने का स्वप्न देखनेवाला सैनिक एक बाला की आत्महत्या से काँप रहा है! आश्चर्य···· महान् आश्चर्य·····!

शिवाजी—देवि·····!

रानी—चुप रहो। जब छल से जावली लिया तब तुम्हारा ज्ञान कहाँ गया था? एक भोली विधवा को अपने झूठे अभिनय से फिर छलना चाहते हो? नही···· । तुम मुझे नही छल सकते। बिचारी शैली ने समझा था कि तुम उसका वरण करने आ रहे हो तभी उसने आत्महत्या की। उसे क्या ज्ञात था कि तुम जावली का अपहरण

करने आये हो, और वह भी छल से। क्षमा·····! मैं तुम्हे कभी क्षमा नहीं कर सकती। जावली पर तुम्हारी पताका फहरा रही है पर उस पर दो स्त्रियों के रक्त की लाली होगी जिसे तुम, तुम्हारी सन्तानें, तुम्हारे चाटुकार कवि और इतिहासकार, कोई नहीं धो सकता।

(रानी हाँफने लगती है। उत्तेजना के कारण वह काँपने लगती है। शिवाजी मौन है।)

रानी—यह जावली का पतन नही तुम्हारा पतन है। जावली आज भी अपराजित है! समझ? जावली आज भी अपराजित है!

(बाहर से सैनिकों का प्रवेश)

सैनिक—यशवन्तराव रायगढ की ओर गया है। कदाचित् वह वहाँ के दुर्ग में शरण लेगा।

रानी—देखा तुमने? यशवन्त अभी जीवित है। उसके बच्चे कृष्ण और वाजी अभी जीवित हैं। वे तुम्हें चैन न लेने देंगे। उनमें मोरों का रक्त है, इसका प्रतिशोध अवश्य लेंगे···· अवश्य लेंगे!

शिवाजी—(चिन्तित स्वर में) यशवन्त रायगढ़ गया है!

रानी—मेरा कार्य समाप्त हुआ। अपने यश का समाचार सुनने के लिए ही मैं जीवित थी। जय जावली!

(रानी तीव्रता से अपनी कंचुकी में छिपी खंग निकालती है और अपने सीने में भोंक लेती है। शिवाजी और सैनिक आश्चर्य से देखते रह जाते है। रानी का शरीर भूमि पर गिर जाता है। शिवाजी उसे सँभालते है, उसकी नाड़ी देखते है और फिर उसके अंचल से उसका मुख ढाँक देते है।)

शिवाजी—**(उठकर वृद्ध स्वर में)** सूर्योदय होने से पहले राय-

गढ़ घेर लो। यशवन्त और उसके पुत्रों के जीवित रहते जावली-विजय अपूर्ण है।

(शिवाजी द्वार की ओर बढ़ते हैं। सैनिक उनके पीछे चलता है। यवनिका गिरती है।)

उपसंहार

स्थान—वही जो उपक्रम मे है।

समय—रात का पहला प्रहर।

(कक्ष में दीपों का प्रकाश है। जीजाबाई प्रसन्न मुद्रा में टहल रही है। शिवाजी का प्रवेश।)

शिवाजी—**(माँ के चरणों पर झुककर)** आपके आशीर्वाद से मैं सफल रहा। आपकी योजना अनुपम सिद्ध हुई।

जीजाबाई—**(उठकर)** आज मै बहुत प्रसन्न हूँ शिवा। माँ भवानी के दर्शन कर आया ?

शिवाजी—वही से आ रहा हूँ माँ।

जीजाबाई—ठीक है। **(अपने स्थान पर बैठते हुए तथा शिवाजी को भी बैठने का संकेत करके)** मोरों ने विरोध तो नही किया ?

शिवाजी—उनके तो हाथ-पैर फूल गए थे। माँ! दौलतराव की विधवा पत्नी और पुत्री ने आत्महत्या कर ली। मै·····मुझे इसका दुख है।

जीजाबाई—युद्ध में ऐसा होता ही है। असंख्य हिन्दू-नारियों की रक्षा के लिए यदि कुछ स्त्रियों के जीवन का अन्त भी हो तो क्या

है ! किन्तु तुझे इतने दिन कहाँ लग गए ? मैं तो चिन्तित हो रही थी।

शिवाजी—यशवन्तराव अपने बच्चों के साथ रायगढ़ के दुर्ग में जा छिपा था। जावली-विजय के पश्चात् मैंने रायगढ़ को घेर लिया।

जीजाबाई—ठीक किया। रायगढ़ पर अधिकार करने मे कितना समय लगा ?

शिवाजी—उस दुर्ग को जीतना सरल न था। मैंने वहाँ भी व्यर्थ का रक्तपात बचाया और कूटनीति से काम लिया। सन्धि का सन्देश भेजकर यशवन्तराव को अपने शिविर मे बुलवाया। वहाँ ····· वहाँ मैंने उसका वध कर दिया। फिर क्या था! दुर्ग पर पलक मारते ही अधिकार हो गया। यशवन्त के बच्चे ·····।

जीजाबाई—उसके बच्चो का क्या हुआ ?

शिवाजी—उनका भी वध करना पड़ा। जब तक उस वंश का मूल से नाश न होता तब तक जावली पर अपना अधिकार स्थायी नही हो सकता था। अब जावली अपनी है।

जीजाबाई—अपने महान् साध्य के लिए यह साधनमात्र है। इस विजय को ही साध्य न मान बैठना शिवा!

शिवा जी—जानता हूँ। आदेश दो माँ, अब मुझे क्या करना है ?

जीजाबाई—जा अभी विश्रामकर। प्रातःकाल तुझे बताऊँगी कि तुझे क्या करना है।

शिवाजी—जो आज्ञा माँ!

(शिवा जी का प्रस्थान। जीजाबाई उठकर टहलने लगती हैं। उनके मुख पर मुस्कान है। धीरे-धीरे यवनिका गिरती है।)

प्यार और पैसा

पात्र--कामना--रायसाहब की एकमात्र पुत्री, अवस्था २० वर्ष।
रायसाहब--नगर के प्रतिष्ठित नागरिक, अवस्था ४५ वर्ष।
मदन--कामना का सहपाठी, अवस्था २५ वर्ष।
प्रेम--कामना का सहपाठी, अवस्था २५ वर्ष।
गगा--नौकरानी, अवस्था २२ वर्ष।

स्थान--रायसाहब की कोठी का एक कमरा।

समय--सन्ध्या।

(कमरा वर्गाकार है तथा आधुनिक ढंग से सजा हुआ है। दीवारें हलके हरे रंग से पुती हैं। सामने की दीवार पर सुन्दर घड़ी है जिसमें ४ बजे हैं। घड़ी की दोनों ओर चित्र हैं। फर्श पर गलीचा बिछा है। उस पर कोच का एक सेट है। बीच में एक गोल मेज है। सामने के बाँये कोने मे एक मेज है जिस पर एक रेडियो रखा है। कमरे में दो द्वार है। सामनेवाला अन्दर जाने के लिए है और बाँई ओर का तीनोंबाहर जाने के लिए। दाहिनी ओर खिड़की है। पर पर्दे पड़े है। पर्दे साफ है क्योंकि आज ही बदले गये है। पर्दा उठने पर कमरे मे गंगा दिखाई देती है। वह कोच और मेज के कवर बदल रही है। गन्दे कवर कन्धे पर डालकर वह एक सरसरी दृष्टि कमरे मे डालती है। अन्दर से कामना आती है। वह सुन्दर है। रंग गोरा है फिर भी काफी पाउडर लगाये है। लिपिस्टिक भी लगी है। रेशमी साड़ी और ब्लाउज पहने है। केशराशि को दो वेणियों में विभक्त किया गया है। एक वक्षस् पर झूल रही है और दूसरी पीठ पर। हाथ मे एक सुन्दर बैग है। बैग मेज पर रखकर वह आलोचनात्मक दृष्टि से कमरे को देखती है।)

कामना—अरे! तूने फूलदान तो रक्खा ही नही!

गगा—माली सजा रहा ह। अभी लाई।

(गंगा बाहर जाती है। अन्दर से रायसाहब आते है। वे चूड़ीदार पैजामा और शेरवानी पहने है। आँखों पर सुनहरे फ़्रेम का चश्मा है और हाथ में छड़ी।)

रायसाहब—क्यो, चलेगी नही क्या?

कामना—नही डैडी। मैं नही जाऊँगी।

रायसाहब—यह क्या पागलपन है तेरा कम्मो? आज आखिरी प्रोग्राम है उदयशकर का। मैंने टिकट भी मँगवा लिये है।

कामना—मुझे ओरियेन्टल आर्ट में कोई 'इन्टरेस्ट' नहीं डैडी।

रायसाहब—(**हँसकर**) अजीब बात है! दुनियाँ पूर्वी कला का आदर करती है और तुझे उससे कोई दिलचस्पी नही! तू तो अपनी जिद के आगे किसी की सुनती ही नही। मैं कहता हूँ एक बार देख तो, आँखे न खुल जायँ तब कहना!

कामना—मुझे नफरत है बेकार की उछल-कूद से। अजीब तरह से हाथ चलाना, आँखे मटकाना, यह कौन-सा आर्ट है! आप जाइये। मै नही जाऊँगी। आज बैलेरियो मे 'न्यू इयर डान्स' है। मैं वहाँ जाऊँगी।

रायसाहब—लेकिन वह तो ९ बजे से होगा।

कामना—'रीगल' मे रीता हेवर्थ का नया पिक्चर लगा है। फर्स्ट शो उसका देखूँगी।

रायसाहब—क्या रखा है अँग्रेजी खेलो मे। सिनेमा ही देखना है तो 'दो बीघा जमीन' देख।

कामना—(**हँसकर**) आपकी 'च्वायस' भी अजीब है डैडी! कहाँ 'एफ्यर्स इन-ट्रिनिडाड' और कहाँ 'दो बीघा जमीन'! हिन्दुस्तानी पिक्चर तो सर-दर्द की दवा पास रखकर देखे। और फिर मुझे तो यह देखना है डैडी कि रीता की शादी ने उसके आर्ट को कहाँ तक 'स्प्वायल' किया है।

(बाहर से गंगा आती है। उसके हाथ में फूलदान है। फूलदान मेज पर रखकर वह अन्दर चली जाती है।)

रायसाहब—(**हँसकर**) तेरा बचपन अभी नही गया।

कामना—(**रूठकर**) डैडी! आप तो हमेशा ऐसे ही कहते है! क्या मैं बूढी हो गई हूँ?

रायसाहब—अरे यह कौन कहता है! पगली कहीं की! किसके साथ जा रही है पिक्चर और डान्स मे?

कामना—(**प्रसन्न स्वर में**) मदन के साथ! मैंने उसे चाय पर बुलाया है। चाय के बाद हम दोनों चल देंगे।

रायसाहब—तू भी अजीब है! किसी एक से तो तेरी पटती ही नहीं! राज की तरह क्या प्रेम से भी झगड़ा हो गया है आजकल?

कामना—(**बिगड़कर**) प्रेम का नाम मेरे सामने न लीजिये डैडी।

रायसाहब—(**कौतूहल से**) अच्छा! ऐसी क्या भूल हो गई है उससे?

कामना—वह गँवार है। बात करने की भी तमीज नही। न जाने कविता कैसे करता है!

रायसाहब—(**अपेक्षाकृत गम्भीर स्वर में**) कम्मो बेटी! रोज-रोज पुराने मित्रों को छोड़ना और नए लोगो से मित्रता करना ठीक नही। समाजवाले हम पर उँगली उठा सकते है।

कामना—(**क्रुद्ध होकर**) आप समाज से डरते है डैडी? मुझे किसी का डर नही!

रायसाहब—(**आर्द्र स्वर में**) तू अभी बच्ची है! समाज में रह-कर समाज के नियमों को मानना ही पडता है। मै·····मै तो यह चाहता हूँ कि·····कि तू जल्दी ही किसी को अपना जीवन-साथी चुन ले।

कामना—(**लजाकर**) डैडी!

रायसाहब—(**रुद्ध कंठ से**) बेटी! जब तू दो साल की थी तभी तेरी माँ को भगवान् ने उठा लिया। लोगों के लाख कहने पर भी मैंने दूसरी शादी नही की—सिर्फ इसलिए कि दूसरी माँ तुझे कष्ट न दे। मैंने माँ बनकर तुझे पाला-पोसा। तेरी छोटी-से-छोटी इच्छा

पूरी की। आज ····· आज यदि तेरी माँ होती तो मुझे यह सब न कहना पड़ता बेटी! अब तो यही एक इच्छा है कि जल्द-से-जल्द तेरे हाथ पीले कर दूं। मगर ····· मगर मैं तेरी इच्छा के विरुद्ध कुछ नही करना चाहता। आज तक ·····।

कामना—डैडी! आप कैसी बातें कर रहे है आज!

रायसाहब—बेटी! आजतक तुझे पूरी आजादी देता रहा हूँ। आज शादी के बारे मे भी मेरी ओर से तुझे पूर्ण आजादी है। तू अब बच्ची नही है। अपना अच्छा-बुरा समझती है, इच्छानुसार अपना साथी चुन ले। मुझे कोई आपत्ति नही होगी।

कामना—**(लज्जा से सिर झुकाकर)** चुनाव मैंने कर लिया है डैडी!

रायसाहब—**(प्रसन्नता से)** किसे चुना है बेटी?

कामना—**(उसी स्वर में)** मदन को।

रायसाहब—ठीक है। वह तैयार है शादी करने के लिए?

कामना—क्यो नही? वह मुझे अपनी जान से भी ज्यादा प्यार करता है। आज ही मै तारीख भी तय कर लूंगी।

रायसाहब—हाँ, शुभ काम में देरी नही बेटी। आज अगर तेरी माँ होती ·····! **(कण्ठ भर आता है।)**

कामना—डैडी! ममी की याद दिलाकर मेरा मूड खराब न कीजिये।

रायसाहब—**(संयत होकर)** अच्छा, अच्छा बेटी। तो ····· तो तू तो चलेगी नही। मै जा रहा हूँ। कार ले जाऊँ या तेरे लिए छोड़ दूं?

कामना—ले जाइये। मदन अपनी गाड़ी लायेगा।

(रायसाहब बाहर जाते है। कामना गंगा को पुकारती है। बाहर

से कार स्टार्ट होने और फिर उसके जाने की ध्वनि आती है। गंगा का प्रवेश।)

कामना—चाय का सब सामान तैयार है ?

गगा—जी हाँ ।

कामना—मदन बाबू को तो तू जानती है न ?

गंगा—जी हाँ। वही न, गोरे से, सुन्दर से, तगडे से·····!

कामना—(**बीच में ही**)बस, बस ! तुझसे लाख बार कह चुकी हूँ, बातें कम किया कर मगर तू है कि मानती ही नही !

गंगा—भूल हो गई ! माफ करो बीबीजी ।

कामना—(**कठोर स्वर में**) फिर वही बीबीजी ! तुझसे कितनी बार कहा है कि मझसे बीबीजी, बाबाजी मत कहा कर !

गगा—फिर क्या कहा करूँ ?

कामना—अपना सर ! जा, बाहर जाकर बैठ। जैसे ही मदन बाबू आयें उन्हे अन्दर ले आना।

गंगा—अच्छा।

(गंगा बाहरवाले द्वार की ओर बढ़ती है ।)

कामना—और देख, अगर जरा भी गलती की तो खैर नही है तेरी । डैडी से कहकर कल ही निकलवा दूँगी।

(गंगा सिर झुकाकर बाहर चली जाती है। कामना अपनी साड़ी ठीक करती है और फिर दोनों वेणियों को बाँधकर जूड़ा बनाती है। उसकी आँखों में नई ज्योति और अधरों पर मुस्कान है। वह बार-बार व्यग्रता से कभी दीवार पर लगी और कभी अपनी कलाई पर बँधी घड़ी की ओर देखती है। बाहर से गगा और किसी पुरुष का कंठ-स्वर आता है।)

कामना—कौन है गंगा ?

गंगा—(**अन्दर आकर डरते हुए**) प्रेम बाबू आए है ।

कामना—(**बिगड़कर**)तूने कहा नही कि मै किसी से मिलना नही चाहती ?

गंगा—कहा था, वे मानते ही नही । कहते है आपसे मिलना बहुत जरूरी है ।

कामना—(**कोच पर बैठकर, दोनों हाथों से सिर थामकर**)कह दे, मेरे सर मे दर्द हो रहा है । मै आराम· · ···।

(**प्रेम अन्दर आ जाता है । वह पाजामा-कुर्ता पहने है । पैरों में चप्पल है । बाल बिखरे है । कामना उसे देखकर उदास हो जाती है । गंगा बाहर चली जाती है ।**)

प्रेम—क्षमा करना कामना मै इस प्रकार चला आया । मुझे कुछ आवश्यक बात करनी है ।

कामना—(**कोच पर अधलेटी मुद्रा मे होकर**) मेरा सिर फटा जा रहा है । डाक्टर ने आराम की सलाह दी है ।

प्रेम—(**समीप ही कुर्सी पर बैठकर**) मै तुम्हे अधिक कष्ट नही दूंगा ।

कामना—(**उठकर बैठती हुई**) कहो, क्या बात है ? पाँच मिनट से ज्यादा मै नही दे सकती । जो कुछ कहना है जल्दी कह डालो ।

प्रेम—मै जो कहना चाहता हूं वह तुम जानती हो । अपने प्रश्न का आज अन्तिम उत्तर चाहता हूँ ।

कामना—उसका जवाब मै कई बार दे चुकी हूँ । मै तुमसे शादी नही कर सकती । अब तुम जा सकते हो ।

प्रेम—(**उठकर टहलता हुआ**) एक बार फिर सोच लो । कामना यह मेरे जीवन-मरण का प्रश्न है ।

कामना—यही मेरा आखिरी जवाब है। तुमसे शादी करके न तो मैं ही सुखी हो सकती हूँ और न तुम्हे ही सुखी कर सकती हूँ।

प्रेम—(**बैठकर दृढ़ स्वर में**) मै इसे नही मानता। तुम मेरे जीवन की ज्योति हो। तुम्हारे बिना मै जीवित नही रह सकता।

कामना—(**हँसकर**) कई लोग ऐसा कह चुके है! जाओ, मेरा समय खराब न करो।

प्रेम—(**कुछ क्रुद्ध स्वर में**) मै तुम्हारा समय नष्ट कर रहा हूँ? कामना! तुम्हे हो क्या गया है? भूल गई वे चाँदनी राते जब हम घटो नौका-विहार करते थे, भूल गई वे सुनहली घडियाँ जब मेरे गीतो के स्वर पर तुम नृत्य करती थी, भूल गई वे .....!

कामना—(**बीच में**) मुझे कुछ भी याद नही। बीती बातो को भुलाने मे ही भलाई है। मेरे लिए वह सब एक सपना था! समझे? सिर्फ एक सपना!

प्रेम—(**आर्द्र स्वर में**)तुम उसे स्वप्न समझ सकती हो किन्तु मै तो उसी की सुधि को हृदय मे अक्षय कोष के समान छिपाये हूँ। कामना मेरी दशा पर तरस खाओ! अपना निर्णय बदल दो, मै तुम्हारे लिए सब कुछ करने के लिए प्रस्तुत हूँ, तुम्हे प्रत्येक प्रकार से सुखी करने की चेष्टा करूँगा।

कामना—(**हँसकर**) तुम मुझे सुखी करोगे! मुझे रहने के लिए अच्छा बंगला, खाने के लिए अच्छा भोजन, पहनने के लिए अच्छी साडियाँ, सेवा के लिए नौकर-चाकर, घूमने के लिए कार चाहिए। दे सकोगे मुझे यह सब?

प्रेम—प्यार कुटी के आँगन मे भी फल-फूल सकता है। कामना हम भूखे-नगे रहकर भी अत्यन्त आनन्द का अनुभव करेंगे। मै गाऊँगा, तुम नृत्य करोगी; प्रणय-सागर मे अपनी रजत-तरी अविराम गति से

बहती जायगी। कल्पना के पंख लगाकर हम अकाश की सैर करेंगे। हम···· ·!

कामना—(**बीच में ही**) बस बस मुझे ऐसा प्यार नही चाहिये। मै तुम्हारी तरह 'सेन्टिमेंटल फूल' नही। मै जीना जानती हूँ। प्यार से ज्यादा मुझे पैसा प्यारा है। मुझे पैसा चाहिए! है तुम्हारे पास पैसा? कर सकोगे मेरी हर इच्छा पूरी? बोलो, जवाब दो।

प्रेम—तुम्हारे लिए अपने प्राण दे सकता हूँ।

कामना—प्राण लेकर क्या मै चाटूँगी। अब जाओ। भगवान् के लिए मुझे आराम करने दो।

प्रेम—(**उठकर क्रुद्ध स्वर मे**) तुम्हे प्यार नही पैसा चाहिये?

कामना—हाँ। आई लव मनी, नॉट मैन!

प्रेम—यदि ऐसा है तो मुझे अब तक अन्धकार में क्यो रखा गया? मेरे साथ प्रेम-प्रपच क्यो किया गया? मेरी भावनाओ से खेलने का क्या अधिकार था तुम्हे! मेरा हृदय तोडकर कौन सा सुख मिल जा गा तुम्हे! बोलो, यदि तुम्हे मुझसे प्यार नही था तो समीप क्यो आई, अपने मादक अभिनय से मेरे जीवन मे आग क्यो लगाई?

कामना—इतना भी नही समझते! बहुत भोले हो तुम। जब मै तुमसे प्यार करती थी तब तुम एक धनी बाप के एकलौते बेटे थे। आज· ···आज तुम दर दर के भिखारी हो। समझे?

प्रेम—किन्तु मैने घर-बार केवल तुम्हारे लिए त्यागा। पिताजी नही चाहते थे कि मै तुमसे मिलू। वे मेरा विवाह दूसरी लडकी से करना चाहते थे। मैने इनकार किया। उन्होने घर से निकाल देने की धमकी दी। मै अपने निश्चय पर अटल रहा। तुम्हे अपनाने के लिए

मैंने उन्हें, उनके ऐश्वर्य और वैभव को ठुकरा दिया। मुझे क्या ज्ञात था कि तुम मुझसे नहीं, मेरे पैसे से प्यार करती हो!

कामना—भूल इन्सान मे ही होती है। ठोकर खाकर ही आँखें खुलती हैं। जाओ, और मेरा ख्याल छोड दो। अब तो शायद सड़क की कोई भिखारिन भी तुमसे शादी करने को राजी न होगी!

प्रेम—(**क्रोध से काँपते हुए**) कामना! नारी इतनी पतित हो सकती है मुझे आज ही ज्ञात हुआ है!

कामना—(**कठोर स्वर मे**) और पुरुष इतना मूर्ख हो सकता है, यह भी मुझे आज ही मालूम हुआ। क्या तुम समझते थे कि मै तुम्हारे साथ भूखी-नगी रहने के लिए शादी कर लूँगी? मेरी अपनी इच्छायें हैं, अपने सपने है, जिन्हे मै पूरा करना चाहती हूँ। जो उन्हें पूरा कर सकेगा उसी से मै शादी करूँगी।

प्रेम—(**व्यंग्य से**) कदाचित् मदन तुम्हारी इच्छाये पूरी कर देगा?

कामना—क्यो नही! उसके पास बँगला है, मोटर है, पैसा है! इसमे जलने की क्या बात है! मै मदन से शादी कर रही हूँ। अगर याद रहा तो दावत का कार्ड भेज दूँगी।

प्रेम—धन्यवाद। मुझे नही चाहिए दावत। हाँ, इतना मै अवश्य कहे देता हूँ कि मदन तुम्हे पैसा भले ही दे दे, प्यार नही दे सकता!

कामना—(**हँसकर**) पैसे से प्यार भी खरीदा जा सकता है पागल! मुझे मदन से, उसके पैसे से प्यार है। पैसा होगा तो प्यार की क्या कमी!

प्रेम—एक बार फिर सोच लो। पैसे से जीवन की प्यास नही बुझ

सकती। (**आर्द्र स्वर में**) कामना! मेरी अच्छी कामना! मेरी ओर, मेरी आँखों में आँखें डालकर देखो। तुम्हारे अभाव मे मेरा दम घुट जायगा। मेरे जीवन से न खेलो।

कामना—इन बेकार की बातो के लिए मेरे पास समय नही। मदन आने ही वाला है। अब जाओ।

प्रेम—तुम्हारे लिए जीवन का कोई मूल्य नही?

कामना—(**चिढ़कर**) नही, नही, नही।

प्रेम—(**व्यंग्य से**) तभी तुम्हारे कारण राजीव, मोहन, श्याम और हरीश ने आत्महत्या की और तुम केवल मुस्कराकर रह गई। तुम्हारा पाषाण-हृदय न पिघला, न पिघला! एक के बाद दूसरे, दूसरे के बाद तीसरे से तुम्हारा प्रणय-व्यवहार चलता रहा। तुम मनुष्य के जीवन को खिलौना समझकर जीभर खेली और फिर उसे तोडकर फेक दिया। (**कठोर स्वर मे**) कामना, तुम नारी नही, नारी के नाम पर कलक हो! तुम एक खूनी पागल हो जिसे हत्या करने में आनन्द आता है।

(**प्रेम क्रोध के कारण हाँफने लगता है।**)

कामना—(**चीखकर**) मेरे ही घर मे इन्सल्ट कर रहे हो! निकल जाओ यहाँ से। चाहते हो तो तुम भी आत्म-हत्या कर सकते हो। मेरी बला से। न तो अभी गगा का पानी सूखा है और न बाजार मे जहर की कमी है। जाओ, मुझे तुमसे, तुम्हारी शक्ल से नफरत ह। फिर यहाँ आने की कोशिश न करना।

प्रेम—(**क्रोध से काँपते हुए**) मैं उन मूर्खों मे नही हूँ जो आत्म-हत्या कर लेते है। मै तो चाहता हूँ कि तुम्हारा यह सुन्दर चेहरा इन नाखूनो से नोच डालूं ताकि तुम अपने जाल मे फिर किसी और को न फँसा सको।

कामना—गेट आउट, आई से।

प्रेम—(**आगे बढ़कर**) मैं चाहता हूँ कि नागिन के दाँत तोड़ डालूं ताकि वह फिर किसी और को न डस सके।

कामना—(**बाहरवाले द्वार की ओर बढ़कर तीव्र स्वर में**) गंगा! गगा! कहाँ मर गई है जाकर? जल्दी आ।

प्रेम—(**हँसकर**) डर गईं? मैं तुम्हारे शरीर के स्पर्श से अपने हाथ अपवित्र नही करना चाहता (**घृणा से**) तुम इस योग्य भी नहीं हो कि तुमसे घृणा की जा सके।

(**प्रेम तीव्र गति से बाहर चला जाता है। कामना मन्द गति से आकर कोच पर बैठ जाती है। बाहर से गंगा आती है।**)

गंगा—मुझे बुलाया था आपने?

कामना—और नही तो क्या तेरी दादी को बुलाया था? तूने उस जगली को क्यो आने दिया यहाँ, बोल?

गंगा—(**घबराकर**) मैं · · मैं तो ··· !

कामना—(**बीच में ही**) मैं · · मैं तो ····· ! सारा मूड ही खराब कर दिया कमबख्त ने! अगर फिर कभी वह जानवर बँगले के अन्दर घुसा तो तेरी खैर नही है। समझी?

गगा—(**सिर हिलाती हुई**) जी···· ।

कामना—जा, अन्दर जाकर चाय का सामान ठीक कर। मदन बाबू आते ही होगे!

(**गंगा अन्दर जाती है। कामना मेज से बैग उठाकर उसे खोलती है और उसमे से एक छोटा सा दर्पण निकालकर अपना मुख देखती है। फिर पाउडर-केस निकालकर चेहरे पर पाउडर लगाती है। शृंगार से सन्तुष्ट होकर दर्पण और पाउडर बैग में रख देती है। नेपथ्य से कार आकर खड़ी होने की आवाज आती है। कामना के मुख पर**

प्रसन्नता की लहर दौड़ जाती है। वह उठकर द्वार की ओर बढ़ती है। बाहर से मदन आता है। वह सूट पहने है। गले में रंगीन टाई है।)

कामना—(**मदन का हाथ पकड़कर**) ओह डार्लिंग! तुमने तो आज मार ही डाला!

मदन—(**घबराकर**) क्यो, खैर तो है!

कामना—(**मुस्कराकर**) मौत की सजा देकर खैर पूछते हो! इन्तजार की भी हद होती है डार्लिंग!

(कामना कोच पर बैठ जाती है और मदन को भी समीप ही बिठा लेती है।)

मदन—हाँ, कुछ देर जरूर हो गई। माफ करो, कम्मो।

(कामना मदन की ओर देखकर मुस्कराती है। मदन भी मुस्करा देता है।)

कामना—(**अन्दरवाले द्वार की ओर मुड़कर**) गंगा! चाय ले आ।

मदन—चाय रहने दो कम्मो! मै चाय नही पिऊँगा।

कामना—(**कलाई पर बँधी घड़ी देखकर**) अभी पिक्चर के लिए काफी समय है। अरे! जल्दी से ले आ चाय गंगा।

गंगा—(**नेपथ्य से**) अभी लाई एक मिनट मे।

मदन—मै अभी-अभी चाय पीकर आया हूँ। अभी इच्छा नही है।

कामना—(**रूठकर**) रहने दो। शायद तुम नाराज हो मुझसे!

मदन—(**रूखी हँसी हँसकर**) नही, ऐसी बात तो नही है। बात यह है कि म·····।

(मदन की बात अपूर्ण रह जाती है। बाहर से कार के हॉर्न की आवाज आती है। गंगा चाय की ट्रे लाकर मेज पर रख देती है। हॉर्न

की आवाज फिर आती है।)

कामना—**(गंगा की ओर मुड़कर)** देख तो गंगा, कौन हॉर्न बजा रहा है ?

मदन—रहने भी दो! बच्चे होगे!

कामना—माली का छोकरा होगा! गंगा, जाकर उसके कान गरम तो कर जरा।

(गंगा द्वार की ओर बढ़ती है।)

मदन—रहने दो गगा। छोटी छोटी बातो पर बच्चो को डॉटना ठीक नही।

कामना—हॉर्न खराब हो गया तो ?

मदन—**(हँसकर)** तो ठीक भी हो जायगा! **(गंगा से)** जाओ, तुम अन्दर जाओ गगा।

(गंगा अन्दर चली जाती है।)

कामना—**(चाय बनाने का उपक्रम करती हुई)** मेरे कहने से सिर्फ चाय ही पी लो! खाना मत कुछ।

मदन—मैं· ···मैं·· ··जरा जल्दी मे हूँ कम्मो! मैं····· मैं तो यह कहने चला आया था कि आज··· आज तुम्हारे साथ न चल सकूँगा

कामना—**(केतली ट्रे में रखकर)** यह कैसे हो सकता है! इस प्रोग्राम के लिए मै डैडी के साथ नही गई।

मदन—आज तो मजबूरी है कम्मो! फिर कभी सही।

कामना—हमारे लिए न तो रोज डान्स ही होगा और न पिक्चर ही रुका रहेगा। **(कुछ लजाकर)** और·····और आज नया दिन है। आज·····मुझे बहुत कुछ कहना है, बहुत कुछ सुनना है। आज मैं तुम्हें अपने से दूर नहीं जाने दूँगी मदन!

(कामना मदन से सटकर बैठ जाती है और उसके बालों से खलने लगती है। बाहर से फिर हॉर्न की आवाज आती है।)

कामना—तो नहा पिओगे चाय?

मदन—(**उठकर**) नही कम्मो! मुझे बहुत जरूरी काम से जाना है। (**अपनी कलाई पर बँधी घड़ी देखकर**) अच्छा, कल मिलेंगे।

कामना—(**उठकर मदन के कोट का कॉलर पकड़कर आर्द्र स्वर में**) मेरा दिल तोड़कर जा रहे हो मदन! मैं·· मैं····!

(बाहर से पुनः हॉर्न की आवाज आती है। इस बार आवाज काफी समय तक आती रहती है।)

कामना—(**द्वार की ओर बढ़कर**) मैं अभी जाकर दिमाग ठीक करती हूँ माली के छोकरे का!

(मदन उसे रोकना चाहता है किन्तु वह द्वार का पर्दा हटाकर बाहर चली जाती है। दूसरे ही क्षण वह आ जाती है। मुख पर क्रोध के चिह्न हैं। मदन का मुख उतर जाता है।)

कामना—(**तीव्र स्वर में**) अब मैं समझी तुम गगा को बाहर क्यों नही जाने देना चाहते थे और तुम्हे क्या जरूरी काम है!

मदन—(**उदास स्वर में**) कम्मो! मैं·····मैं·····।

कामना—(**बीच में ही**) मैं पूछती हूँ, कौन है यह लडकी?

मदन—सेठ लक्ष्मीपति की लडकी पुष्पा है।

कामना—तुम्हारी कार पर क्यो बैठी है वह? क्या····क्या उसी के साथ तुम्हे जाना है? (**सिसकते हुए**) क्या·····क्या उसी ····· क्या उसी··· ··उसी के लिए तुम·····आज का प्रोग्राम कैन्सिल कर रहे हो? उसी के यहाँ चाय भी पी होगी शायद!

मदन—(**गम्भीर स्वर में**) मैं तुमसे झूठ नही बोलूंगा कम्मो! मैंने चाय भी उसी के यहाँ पी है और·····और उसी के साथ जाना भी

है। (**बाहर से पुष्पा फिर हॉर्न बजाती है। मदन द्वार के समीप जाकर पर्दा हटाता हुआ**) अभी आया डियर।

कामना—(**चीखकर**) मेरे सामने उसे डियर कहते तुम्हें शर्म नही आती मदन! वह काली-कलूटी, मोटी और बदसूरत लडकी·····!

मदन—(**मुंह पर उँगली रखकर**) धीरे से बोलो। सुन लेगी तो····!

कामना—तो क्या फाँसी पर चढा देगी? बडे बाप की बेटी होगी तो अपने लिए! मै क्यो डरूँ किसी से? (**मदन के समीप जाकर धीमे स्वर में**) मदन! आज डैडी हम दोनो की शादी के बारे मे कह रहे थे। (**मदन से सटकर**) डार्लिंग! मै अब तुमसे दूर नही रह सकती। कल ही हम सिविल मैरेज कर लेंगे।

मदन—(**कामना से अलग हटकर**) लेकिन यह कैसे हो सकता है! मै···· मै ····!

कामना—(**बीच में ही मादक स्वर में**)क्या तुम मुझे प्यार नही करते मदन?

मदन—लेकिन मै·····मेरी·····शादी पुष्पा से हो रही है।

कामना—(**तीव्र स्वर में**) मदन!

मदन—मै ठीक कह रहा हूँ कामना। शादी के कार्ड भी छप गये हैं। कल तुम्हारे पास भी आ जायगा।

कामना—(**भरे कंठ से**) यह तुमने क्या किया मदन? (**सिसकते हुये**) इससे अच्छा तो यह है कि·····कि तुम अपने हाथों से मेरा गला घोट दो। (**मदन से चिपटकर**) मदन! मेरे मदन! मै तुम्हारे बिना जिन्दा नही रह सकती। मै·····मै ····· आत्महत्या कर लूंगी। सच कहती हूँ मै मर जाऊँगी!

मदन—(**कामना को कोच पर बैठाकर**) कहनेवाले बहुत

और मरनेवाले थोड़े ही होते है, यह मै भी जानता हूँ और तुम भी जानती हो । मेरा पुष्पा से शादी करना बहुत जरूरी है। (**द्वार की ओर बढ़कर**) इससे अधिक मै और कुछ कहना नही चाहता।

कामना—(**उठकर**) ठहरो ! पुष्पा-जैसी गँवार-भद्दी लड़की के साथ शादी करके तुम्हे क्या मिलेगा मदन !

मदन—(**रुककर मुड़ता हुआ**) वही जो पाने के लिए तुम मुझसे शादी करना चाहती हो।

कामना—(**आगे बढ़ती हुई आर्द्र स्वर में**) सुख और प्यार मिल सकेगा तुम्हे ?

मदन—(**हँसकर**) क्यो नही ! तुम्हे शायद मालूम नही कि पुष्पा सेठजी की एकलौती बेटी है। और उनके पास जितनी सम्पत्ति है वह तो शायद तुमने सुना ही होगा !

कामना—तो ·· तो क्या तुम पैसे के लिए पुष्पा से शादी कर रहे हो ?

मदन—पैसा सब सुखो की कुजी है।

कामना—(**क्रुद्ध होकर**) पैसे के लिए तुम मेरे प्यार को ठुकरा रहे हो मदन ! क्या यही तुम्हारी इन्सानियत है ? इसी दिन के लिए मुझसे प्यार का खेल खेला जा रहा था ? (**कोच पर बैठकर सिसकती हुई**) कितने निष्ठुर हो तुम ! मेरे हृदय को खिलौना समझकर तोड़ने से पहले यह तो सोचो कि तुम्हारे बिना मेरा क्या हाल होगा !

मदन—हम दोनो एक-दूसरे को समझते है कम्मो। जानता हूँ कि तुम्हे मुझसे नही, मेरे पैसे से प्यार है। मुझे भी तुमसे अधिक तुम्हारे पैसे की चाह थी ! (**हँसकर**) कितने नादान थे हम दोनों !

एक-दूसरे को छलने की कोशिश कर रहे थे हालाँकि हम दोनों अँधेरे में थे !

कामना—(उठकर) घाव पर और नमक न छिडको मदन ! चले जाओ यहाँ से।

मदन—(हँसकर) मैं समझता था तुम रायसाहब की एकलौती बेटी हो। मुझे क्या मालूम था कि ढोल के अन्दर पोल है। यह तो पुष्पा से मालूम हुआ कि रायसाहब की सारी रियासत उसके पिता के यहाँ रहन है।

कामना—(चीखकर) तुम मेरा अपमान कर रहे हो मदन ! निकल जाओ यहाँ से।

मदन—जा रहा हूँ। जाने से पहले मैं तुम्हारा भ्रम दूर कर देना अपना फर्ज समझता हूँ। तुम्हारी तरह अपना भी हाल है। सब ठाट दिखावटी है। मैं पैसा चाहता हूँ, इसीलिए तुम्हारी तरफ खिचा था। सच्चाई मालूम हो जाने पर पुष्पा को पकड़ा है। मैं मानता हूँ वह गँवार है, काली है, मोटी है पर मुझे इससे क्या ! पैसा तो है। लक्ष्मी की कृपा होगी तो रति-रम्भाएँ भी पैर चूमेगी। अच्छा, अब आज्ञा दो।

कामना—गेट आउट यू बीस्ट। गेट आउट फ्राम हियर।

(बाहर से हार्न की आवाज फिर आती है।)

मदन—(जोर से) अभी आया डार्लिंग। (कामना की ओर मुड़कर) शादी की दावत मे आना न भूलना कम्मो। टा ! टा !

(मदन बाहर चला जाता है। कामना कोच पर लुढ़ककर सिसकने लगती है। बाहर से मदन और पुष्पा की हँसी तथा कार स्टार्ट होने की आवाज आती है। कामना सिसकती रहती है। यवनिका गिरती है।)

———

क़सम क़ुरान की

पात्र—शेरशाह—पठान शासक।

पूरनमल—रायसेन दुर्ग का स्वामी, स्वतन्त्र शासक।

पद्मादेवी—पूरनमल की पत्नी।

मदारखां—पठान सेनापति।

सैनिक आदि।

स्थान—रायसेन दुर्ग के बाहर शेरशाह का सैनिक शिविर।

समय—सन् १५४२ ई० के अन्त का एक प्रातःकाल।

(शिविर साधारण है। बैठने के लिए एक बड़ी तथा कुछ छोटी चौकियाँ पड़ी हैं। सब पर मोटी गद्दियाँ हैं। यत्र-तत्र अस्त्र-शस्त्र रखे हैं। दाहिनी ओर शिविर का द्वार है जो खुला है। उधर से कुछ धूप अन्दर आ रही है। पर्दा उठते समय शेरशाह टहलता हुआ दिखाई पड़ता है। वह सैनिक वेश में है। उसके हाथ में नंगी कटार है। रह-रह कर वह उसकी धार की परीक्षा करता है। बाहर से मदारखां आता है। वह भी सैनिक वेश में है।)

शेरशाह—कहो मदारखां! पूरनमल ने हमारे एलची को किले मे घुसने दिया या नही?

मदारखां—**(झुककर)** जी हाँ। एलची इस वक्त पूरनमल के सामने होगा। शायद पूरनमल ने आपका खत पढ़ भी लिया हो!

शेरशाह—**(प्रसन्न होकर)** तब ठीक है।

मदारखां—लेकिन मेरी समझ में यह नही आया कि आपने चार महीने में ही हार मानकर सुलह का पैगाम क्यो भेज दिया। यह तो पठानों की, उनकी तलवारो की तौहीन है। आज नही तो कल, हम किला जरूर फतह कर लेते!

शेरशाह—हम किला कभी भी फतह नही कर सकते थे।

मदारखा—थोड़ा सब्र से काम लेने से सब हो जाता! रसद खत्म होते ही किले का फाटक खुल जाता और पूरनमल आपकी कदम-बोसी करता नजर आता! खता माफ हो, आपने सुलह का पैगाम भेजने मे कुछ जल्दबाजी से काम लिया।

शेरशाह—तुम मैदाने जग मे तलवार चला सकते हो लेकिन दिमाग से कुछ सोचना तुम्हारे बस के बाहर की बात है मदारखा! तुमने यह भी सोचा है कि बारिश सिर पर है। अगर महीना भर और पड़ा रहना पड़े तो हमारी फौज बरबाद हो जायगी, रसद

आने के रास्ते बन्द हो जायँगे। जान-बूझ कर अपने सिपाहियों को मौत के मुंह में ढकेलना दूरन्देशी नही है।

मदारखां—आप बजा फरमाते है लेकिन पठानों की जिन तलवारों ने मुगलों को हिन्दोस्तान के बाहर खदेड दिया उनकी धार का एक अदना इन्सान के सामने कुन्द हो जाना तौहीन नही तो और क्या है! सुलह के पैगाम ने सिपाहियो में गुस्सा भर दिया है। वे·····।

शेरशाह—(**बीच में ही**) लेकिन उनसे यह किसने कहा कि मैंने पूरनमल के पास सुलह का पैगाम भेजा है।

मदारखां—मैंने।

शेरशाह—(**व्यंग्य से**) और तुमसे यह किसने कहा ?

मदारखां—जी·····जी मैंने सोचा·····।

शेरशाह—(**बीच में ही क्रुद्ध स्वर में**) तुमसे हजार बार कह चुका हूँ कि तुम सोचा न करो। मैंने सुलह का पैगाम नहीं भेजा है। समझे ?

मदारखा—जी, लेकिन वह खत·····?

शेरशाह—(**हँसकर**) उस खत का मजमून जानना चाहते हो ? नकल मेरे पास है। मैं तुम्हें पढकर सुनाता हूँ। (**अपने वस्त्रों से एक कागज निकालकर उसे पढ़ता हुआ**) मेरे अजीज दोस्त पूरनमल! मैं आपकी तरफ दोस्ती का हाथ बढ़ा रहा हूँ। उम्मीद है आप इसे थाम लेंगे। मै नही चाहता कि हमारे सिपाहियो का खून बेकार में ही बहे। मैंने इस मसले पर बहुत सोचा है। जग बादशाहों में होती है और मारे जाते है गरीब सिपाही। मुझे आपका किला नही चाहिए। मेरी तरफ से जंग बन्द है, लेकिन वापस जाने के पहले मैं चाहता हूँ कि आप मेरे खेमे में आयें ताकि हम दोनों मिलकर दोस्ती के जाम का मजा चखें। उम्मीद है आप जरूर आयेंगे। मैं यकीन दिलाता

हूँ आपको और आपके बीबी-बच्चों को किसी तरह का नुकसान नहीं पहुँचेगा। मैं कुरान की कसम खाता हूँ। आपके आने का इन्तजार है। फकत—आपका शेरशाह। सुन लिया खत तुमने मदारखां? (**कागज मोड़कर फिर रखता हुआ**) तुम इसे सुलह का पैगाम कहते हो?

मदारखां—पूरनमल तो यही समझेगा कि हम हार गए हैं तभी तो वापस जाना चाहते हैं।

शेरशाह—समझने दो। हम हारे हैं या जीते हैं इसका फैसला तो आनेवाला वक्त ही करेगा। (**चाव से हाथ की कटार को देखकर**) मेरी कटार सलामत रहे। खुदा ने चाहा तो आज की शब रायसेन के किले में ही गुजारेंगे।

मदारखां—पूरनमल के मेहमान बनकर?

शेरशाह—नहीं, किले के मालिक बनकर।

मदारखां—आपका मतलब·····?

शेरशाह—थोड़ी देर में सब मालूम हो जाएगा। पूरनमल को आने तो दो मेरे खेमे में।·

मदारखां—आपका मतलब मैं समझ गया। आखिर मैं भी तो पठान हूँ! लेकिन·····लेकिन कसम का क्या होगा?

शेरशाह—कसम तोड़ने के लिए बनी है। कसम कुरान की मैं किसी भी कसम-वसम को नहीं मानता। सियासत में कसमों की कोई वकत नहीं। (**हँसकर**) अब जाओ तुम और जाकर सिपाहियों की गलतफहमी दूर कर दो।

मदारखां—(**झुककर**) जो हुक्म!

शेरशाह—पूरनमल के आते ही उसे फौजी सलामी दो ताकि वह खुश हो जाय और उसे किसी तरह का शक न हो।

(**सिर हिलाकर मदारखां चला जाता है। शेरशाह फिर टहलने**

लगता है। वह प्रसन्न है तभी मदारखां फिर अन्दर आता है। वह घबराया हुआ है।)

शेरशाह—क्या है ?

मदारखां—पूरनमल तो आ गया।

शेरशाह—अच्छा ! अकेला ही है ?

मदारखां—उसकी बीबी भी साथ है।

शेरशाह—अच्छा ! उन्हे इज्जत के साथ अन्दर भेज दो।

(मदारखां का प्रस्थान। कुछ देर बाद ही पूरनमल और पन्नादेवी का प्रवेश। पूरनमल सैनिक वेश में है। पन्नादेवी की कमर में भी कटार है। आँखों तक का भाग अवगुंठन में है।)

शेरशाह—**(प्रसन्नता से आगे बढ़कर)** आओ मेरे दोस्त ! बैठो।

(तीनों बैठ जाते है।)

शेरशाह—आपको पाकर मैं बहुत खुश हूँ, लेकिन बेहतर होता अगर आप अकेले ही आते।

पूरनमल—**(हँसकर)** मेरी पत्नी को मेरे यहाँ अकेले आने मे भय दिखाई दिया, इसीलिए यह मेरी रक्षा के लिए साथ चली आयी ! है।

शेरशाह—**(हँसकर)** बहुत खूब। औरत मर्द की हिफाजत करेगी ! आप लोगो की हर बात निराली है !

पूरनमल—हम क्षत्रियों की बाते आपकी समझ में नही आयेगी।

शेरशाह—समझने की कोशिश करूँगा। सुना है, आप लोग बहुत बहादुर होते है !

पूरनमल—वह तो आप खुद देख चुके है।

शेरशाह—हाँ। लेकिन अन्धी बहादुरी किस काम की। बाजुओ के साथ-साथ दिमाग में भी जोर होना चाहिए।

पूरनमल—(**व्यंग्य से**) उसकी भी परीक्षा कर लीजिए।

शेरशाह—(**हँसकर**) वह तो की ही थी, लेकिन उसमें आप नाकामयाब रहे।

पूरनमल—(**चौंककर**) क्या मतलब?

शेरशाह—(**उठकर एक हाथ से कटार और दूसरी से तलवार क्रमशः पूरनमल और पन्नादेवी के सीनों पर रखता हुआ**) मतलब साफ है। मैं तो नही समझता था कि आप इतनी आसानी से जाल मे फँस जायँगे। (**जोर से**) मदारखा!

(**मदारखां का कई सैनिकों के साथ प्रवेश। सबके हाथों में नंगी तलवारें हैं।**)

शेरशाह—(**व्यंग्य से**) कितना अकलमन्द है हमारा यह दोस्त! अपने साथ अपनी हिफाजत के लिए बीवी को लाया है। (**कठोर स्वर में**) ले जाओ इस चिडिया को अपनी तफरीह के लिए।

(**सैनिक पन्नादेवी की ओर बढ़ते हैं।**)

पन्नादेवी—(**गरजकर**) सावधान। यदि किसी ने मेरा स्पर्श किया तो ठीक नही होगा। (**शेरशाह से**) नीच कुत्ते! कुरान की कसम खाकर भी विश्वासघात करता है।

शेरशाह—सिपाही की कसम का क्या भरोसा!

पूरनमल—हम क्षत्रिय तो अपनी शपथ पर प्राण तक दे देते है।

शेरशाह—बेवकूफ ऐसा ही करते है। (**सैनिकों से**) ले जाओ इस औरत को।

मदारखा—बला की खूबसूरत है!

शेरशाह—किले में ऐसी बहुत-सी मिलेंगी। घबराते क्यो हो!

(**पन्नादेवी अपनी कटार निकालने की चेष्टा करती है। मदारखां उसकी कटार छीन लेता है।**)

मदारखां—खतरनाक भी कम नही है!

पन्नादेवी—मै शेरनी हूँ। सौन्दर्य के साथ-साथ शक्ति भी है। समय पडने पर भयकर बन सकती हूँ। **(उठने की चेष्टा करती हुई)** चाण्डालो! जाने दो हम लोगों को। छोड दो हमे।

शेरशाह—**(भयंकर हँसी हँसकर)** देखते क्या हो! ले जाओ इसे। **(मदारखां आगे बढ़ता है। पन्नादेवी अपने पति की ओर देखती है। पूरनमल विद्युत्वेग से अपनी तलवार निकालकर पत्नी के वक्ष में भोंक देता है। वह गिर पड़ती है।)**

पूरनमल—ले जाओ अब इसकी लाश को।

(सब भय और विस्मय से कभी पूरनमल और कभी पन्नादेवी के मृत शरीर की ओर देखते है। शेरशाह बढ़कर पूरनमल की तलवार छीन लेता है। उसका संकेत पाकर सैनिक पन्नादेवी के मृत शरीर को उठा ले जाते है। मदारखां वहीं रुक जाता है। पूरनमल के मुख पर संतोष के चिह्न है।)

शेरशाह—इस गुस्ताख को जजीरो से जकड दो। इसके कैद होने और इसकी बीवी की मौत का हाल सुनते ही किलेवाले घबराकर फाटक खोल देगे।

पूरनमल—अवश्य। लेकिन वहाँ तुम्हे मिलेगा कुछ नही।

मदारखा—**(हँसकर)** औरते भी नही?

पूरनमल—**(क्रुद्ध होकर)** नही। उन्होने अब तक जौहर कर लिया होगा! केसरिया बाना पहने वीर क्षत्रिय अवश्य मिलेगे अपनी तलवारों से तुम्हारा सिर काटने के लिए।

शेरशाह—देखा जाएगा। बाँध दो इसे।

(मदारखां आगे बढ़ता है।)

पूरनमल—**(अपने वस्त्रों से एक छोटी-सी कटार निकालकर**

अपने सीने में भोंकता हुआ) दूसरी लाश को ही बन्दी बना सकेग। मुझे ·· ·मुझे नही !

(पूरनमल गिर जाता है। रक्त की धार बहने लगती है। मदारखां शेरशाह की तरफ देखता है।)

शेरशाह——कसम कुरान की, यह लोग जीने के साथ-साथ मरना भी जानते है !

मदारखा——जिन्दगी की कोई कीमत ही नही इनके लिए। खैर, किला तो अब अपना है ही !

शेरशाह——बिला शक। मगर··· मगर यह जीत भी मेरी भारी हार है, कसम कुरान की।

(दोनों द्वार की ओर बढ़ते है। यवनिका गिरती है।)

सोना और मिट्टी

पात्र--खन्ना--एक धनी व्यक्ति, अवस्था ४५ वर्ष।
श्रीमती खन्ना--खन्ना की पत्नी, अवस्था ४० वर्ष।
विमला--खन्ना की पुत्री, अवस्था १८ वर्ष।
देवी--पुराना नौकर, अवस्था ५० वर्ष।
चम्पा--पुरानी महराजिन, अवस्था ४० वर्ष।
रामलाल--नया नौकर, अवस्था २५ वर्ष।
इसपेक्टर साहब, धोबी आदि।

स्थान--खन्ना साहब की कोठी का एक कमरा।

समय--प्रातःकाल।

(कमरा वर्गाकार है तथा आधुनिक शैली के अनुसार सजा हुआ है। फर्श पर गलीचा बिछा है। सामने की दीवार पर बिजली से चलनेवाली एक गोल घड़ी लगी है, जिसमें ९ बजकर १० मिनट हुए हैं। दाहिनी ओर और बायीं ओर द्वार है, जिन पर रेशमी जालीदार पर्दे पड़े हैं। प्रथम द्वार अन्दर की गैलरी में खुलता है और दूसरा बाहर के बरामदे में। कमरे के बीच में एक गोल मेज पड़ी है, जिसके आस-पास कुर्सियाँ पड़ी हैं। मेज पर सुरुचिपूर्ण आवरण है और कुर्सियों पर गद्दियाँ हैं। दोनों द्वारों के ऊपर दीवार में दो सुन्दर चित्र लगे हैं।

(जब पर्दा उठता है तो खन्ना साहब बेचैनी से टहलते हुए दिखाई पड़ते हैं। वे स्लीपिंग सूट पहने हैं। ऊपर से लम्बा गाउन भी है। पैरों में स्लीपर, मुंह में पाइप, आँखों पर मोटे फ्रेम का चश्मा और बगल में अखबार दबा है।)

खन्ना--**(पाइप हाथ में लेते हुए अन्दरवाले द्वार के समीप रुककर)** अरे! मैं पूछता हूँ, मिले या नहीं?

श्रीमती खन्ना--**(नेपथ्य से)** यहाँ भी नहीं है। न जाने कहाँ रख दिए हैं विमला ने!

खन्ना--मैं कहता हूँ, पूछती क्यों नहीं उससे?

श्रीमती खन्ना--**(नेपथ्य से)** पूछा तो था। वह तो कहती है आपकी अलमारी में रख दिए थे!

खन्ना--**(क्रुद्ध स्वर में)** तो अलमारी क्यों नहीं देखती?

श्रीमती खन्ना--**(तीव्र स्वर में अन्दर से ही)** एक अलमारी क्या, मैंने तो घर का कोना-कोना छान मारा! मुझे तो मिलते नहीं।

खन्ना--**(टहलते हुए)** ठीक है! आज सोने के बटन नहीं

मिलते, कल अँगूठियाँ नहीं मिलेंगी, परसों हार खो जायंगे। अजीब मुसीबत है !

(श्रीमती खन्ना का प्रवेश। वे स्वच्छ-श्वेत साड़ी पहने हैं। कानों में हीरे के टाप्स, नाक में कील, गर्दन में मोतियों की माला, हाथों में जड़ाऊ चूड़ियाँ हैं।)

खन्ना--विमला कहाँ है ?

श्रीमती खन्ना--पढ़ रही होगी अपने कमरे मे !

खन्ना--(**तीव्र स्वर में**) विमला ! विमला ! !

विमला--(**नेपथ्य से**) आई पिताजी।

(खन्ना साहब फिर टहलने लगते हैं। श्रीमती खन्ना एक कुर्सी पर बैठ जाती हैं। विमला का प्रवेश। वह सिल्क की हलकी साड़ी पहने है। हाथों में कंगन है। गले में जड़ाऊ नेकलेस है।)

खन्ना--तुझे ठीक याद है बेटी ?

विमला--हाँ पिताजी। आपके कुर्ते से निकालकर बटन मैंने अलमारी में रख दिए थे।

खन्ना--यह तो ठीक है। लेकिन·····!

विमला--(**बीच में ही**) इसमे लेकिन-वेकिन की क्या बात है ? क्या मै हमेशा आपके बटन नही रखती ! माताजी कहती है मै और कही रखकर भूल गई। मै कहती हूँ नही, नही,·····नही। कल की बात क्या मै भूल जाऊँगी !

खन्ना--(**हँसकर**) नाराज क्यों होती है ? तेरी माँ का तो स्वभाव ही ऐसा है।

(खन्ना साहब तिरछी दृष्टि से अपनी पत्नी की ओर देखते हैं, पर वे अपना मुंह दूसरी ओर कर लेती हैं।)

खन्ना--बैठ जा बेटी । बटनों का पता तो लगाना ही है। अवश्य किसी नौकर ने चुराये हैं।

(विमला अपनी माँ के पास बैठ जाती है । खन्ना साहब भी बैठ जाते हैं। वे पाइप और अखबार मेज पर रख देते हैं।)

श्रीमती खन्ना--बेकार मे ही नौकरों पर सन्देह करना ठीक नही !

खन्ना--(**बिगड़कर**) नौकरो पर सन्देह न करूँ तो क्या अपने पर करूँ। अगर किसी ने चुराये नही तो क्या अलमारी खा गई ? मैं तुम्ही से पूछता हूँ, क्या परियो की कहानियों की तरह वे गायब हो गए ?

श्रीमती खन्ना--चीखते क्यों हो इस तरह ? पडोसी सुनेंगे तो क्या कहेंगे !

खन्ना--कहेंगे अपना सिर। जानती हो, वे बटन मुझे बाबूजी ने दिए थे और उन्हे बाबा ने दिए थे। वे साधारण बटन नही थे, खानदानी बटन थे ! समझी? खानदानी! (**विमला की ओर मुड़कर**) हाँ, बेटी ! महराजिन के बारे में तुम्हारा क्या विचार है ?

श्रीमती खन्ना--(**बीच में ही**) कैसी बाते कर रहे हो ? सालो से काम कर रही है, आज बटन चुरायेगी वह !

खन्ना--मैं कहता हूँ, अगर तुम बीच मे न बोलो तो बहुत अच्छा हो। तुम्हारी क्या, तुम तो अपने समान सभी को सच्चा समझती हो। दुनियाँ कितनी मक्कार है, तुम्हे क्या मालूम ! पैसे के लिए बाप बेटे का, भाई बहन·····!

श्रीमती खन्ना--बस·····बस·····बस·····। अपना भाषण रहने दो। कई बार सुन चुकी हूँ। कान पक गए है सुनते-सुनते !

(खन्ना साहब क्रोध से उनकी ओर घूरते हैं। विमला दोनों की दृष्टि बचाकर मुस्कराती है।)

खन्ना—हाँ, बेटी! चम्पा के बारे में······?

विमला—**(बीच में ही)** वह ऐसा नही कर सकती पिताजी। आपको याद होगा, एक बार मेरा हार खो गया था······!

खन्ना—**(बीच में ही)** याद है। लेकिन नियत बदलते देर नहीं लगती। जा बेटी! तू जरा पुलिस-स्टेशन को फोन कर दे। मैं नौकरो से बात करूँगा। सैकडो जासूसी उपन्यास पढ डाले है; बेटी, अगर चोर को पकड न लिया तो मेरा नाम नही!

(विमला उठकर द्वार की ओर बढ़ती है। खन्ना साहब मुस्कराकर पत्नी की ओर देखते हैं।)

खन्ना—और हाँ बेटी! चम्पा को भेज देना।

(विमला का प्रस्थान)

श्रीमती खन्ना—**(विनम्र स्वर में)** यह क्या तमाशा कर रहे हो? मेरी बात मानो! विमला बटन और कही रखकर भूल गई है। दो-एक दिन मे अपने आप मिल जायगे।

खन्ना—तुम्हारी बात मानूँ तो बटनो से हाथ धोना पड़ेगा। मुझे वे बहुत प्यारे हैं। बाबूजी के स्मृति-चिह्न का चोरी जाना मै नही सह सकता।

श्रीमती खन्ना—**(उठकर क्रुद्ध स्वर में)** चोरी···· चोरी ····· चोरी तुम्हे दुनियाँ में सब चोर ही दिखाई देते है। तुम्हे छोड़कर जैसे और कोई साहूकार है ही नही! अभी नौकरों पर शक करते हो, कल मेरे भाई पर करोगे। **(व्यंग्य से)** वह भी तो आया था कल यहा! हो सकता है वही चुरा ले गया हो! उसके नाम वारंट क्यों नहीं निकलवा देते ?

खन्ना--तुम्हारे मुह तो लगना ही बेकार है। क्या नौकरों और श्याम में कोई अन्तर ही नही है ? क्या पागलपन की बात की है--श्याम को चोरी लगा दूँगा ! भगवान् ने बुद्धि तो जैसे दी ही नही है तुम लोगो को ?

श्रीमती खन्ना--(**द्वार की ओर बढ़ती हुई**) ठीक है। मै तो मूर्ख हूँ ! जो तुम्हारी इच्छा हो करो, मै जा रही हूँ ।

(**श्रीमती खन्ना का प्रस्थान। उसी द्वार से चम्पा का प्रवेश। वह साधारण वस्त्र पहने है।**)

खन्ना--तुमने मेरे बटन लिये है ?

चम्पा--(**आश्चर्य से**) मैंने ? भगवान् की सौगन्ध जो मैंने देखे भी हो, हाथ लगाना तो दूर रहा !

खन्ना--(**अपेक्षाकृत कठोर स्वर में**) कल मेरे कमरे मे क्यों गई थी तुम ?

चम्पा--(**रूँआसी होकर**) मै तो महीनो से उधर नही गई, आप क्यों मुझ पर कलक लगाते है ?

खन्ना--इसमे कलक की क्या बात है ! मै तो सीधी-सी बात पूछ रहा हूँ, सफाई किसने की थी मेरे कमरे की ?

चम्पा--(**कुछ ठहरकर**) शायद रामलाल ने !

(**विमला का प्रवेश। वह आकर अपने स्थान पर बैठ जाती है।**)

खन्ना--फोन कर दिया ?

विमला--जी हाँ। स्टेशन-आफिसर ने कहा है कि जल्द-से जल्द इंसपेक्टर साहब को भेज दूगा।

खन्ना--ठीक है। उसके आने से पहले ही हम चोरों को पकड़

लेगे। **(चम्पा से)** रामलाल की बीबी का क्या हाल है अब ?

चम्पा--हालत ठीक नही है। बेचारा बहुत दुखी है।

खन्ना--क्यो ? बीमार सभी होते है; इसमे दुख की क्या बात है !

चम्पा--जिसके पास बच्चे के लिए दूध के पैसो का भी ठिकाना नही वह दवा-दारू कैसे करे ! आज के डाक्टर बिना पैसे के बात नही करते, चाहे कोई मर ही क्यो न जाए।

खन्ना--डाक्टर पैसे न ले तो खाय क्या ?

चम्पा--पैसे लेने के लिए और लोग जो है। दया तो जैसे जानते ही नही ये लोग ! इसी से रामलाल परेशान है। मुझसे दस रुपए माँग रहा था।

खन्ना--**(उत्सुकता से)** कब ? तुमने दिये ?

चम्पा--दो तीन दिन हुए मै कहाँ से देती ! शायद देवी से लिए हो।

खन्ना--**(प्रसन्न होकर)** अच्छा, जाओ तुम। देवी को भेज देना।

(चम्पा का प्रस्थान।)

विमला--रामलाल कल मुझसे भी रुपए माँग रहा था पिताजी।

खन्ना--क्या तुमने दे दिए ?

विमला--नही। मैंने कहा, पहली के बाद मिलेगे।

खन्ना--मुझे विश्वास हो गया है कि बटन रामलाल ने ही चुराये है। मै पहले ही कहता था कि नए नौकरो का विश्वास नही करना चाहिए, लेकिन तुम्हारी माँ तो किसी की सुनती ही नही !

(देवी का प्रवेश। वह ऊँची धोती और बंडी पहने है।)

खन्ना--मेरे बटन चोरी चले गए है।

देबी--सुना तो है, लेकिन समझ मे नही आता कुछ। मैंने तो लिए नही है!

खन्ना--मै जानता हूँ। रामलाल के बारे में तुम्हारी क्या राय है?

देबी--लडका है तो ईमानदार! दो साल से काम कर रहा है, कभी कोई चीज नही गई।

खन्ना--सुना है, इस समय उसे अपनी बीवी के इलाज के लिए पैसे की सख्त जरूरत है। उसने चम्पा से रुपए माँगे भी थे।

देबी--माँगे तो मुझसे भी थे, (**दुखी स्वर में**) लेकिन मेरे पास थे ही नही जो बेचारे का काम निकल सकता।

खन्ना--मेरा दिल कहता है, बटन उसी ने चुराये है।

देबी--(**कुछ पीछे हटकर**) नही साहब। वह ऐसा नही कर सकता!

विमला--विश्वास तो मुझे भी नही होता पिताजी।

खन्ना--मै मनुष्य की दुर्बलता जानता हूँ बेटी! अपराध और अपराधियो की मनोवृत्ति का मैंने गहन अध्ययन किया है। मै दृढता के साथ कह सकता हूँ कि बटन उसी ने लिये है।

विमला--कैसे? क्या प्रमाण है इसका?

खन्ना--(**हँसकर**) आवश्यकता सब पापों की जड है। पैसे के लिए बड़े-बड़े धर्मात्मा भी शैतान बन जाते है! तू देखती चल; अभी उसी से मनवाता हूँ। चोर का कलेजा ही कितना होता है! देबी, जाकर रामलाल को भेज दो। और देखो, उससे कुछ कहना मत अभी।

(देवी का प्रस्थान।)

विमला—माँ, श्याम मामा के लिए क्या कह रही थीं ?

खन्ना—**(हँसकर)** कह रही थी—आज मैं नौकरो पर सन्देह करता हूं, कल श्याम पर करूँगा ! उनकी दृष्टि मे दोनो समान है। तू ही बता बेटी, रायसाहब के बेटे पर कभी शक किया जा सकता है ! एक बड़े बाप का बेटा कभी चोरी कर सकता है !

विमला—क्यो नही ! अभी आपने ही तो कहा था कि पैसे के लिए·····!

खन्ना—**(बीच में ही)** फिर भी वश का असर तो रहता ही है बेटी ! खानदानी आदमी भूखो मर जायगा पर चोरी नही करेगा।

(रामलाल का उदास मुद्रा में प्रवेश। उसके वस्त्र फटे और गन्दे है।)

खन्ना—**(कठोरता से)** जानते हो, तुम्हे क्यो बुलाया है मैंने ?

रामलाल—जी·····।

खन्ना—**(बीच में ही)** मेरे बटन चोरी गए है और मै जानता हूँ कि चोर तुम हो। मैंने थाने पर फोन कर दिया है। मै नही चाहता कि पुलिस की मार तुम्हे खानी पडे। **(रामलाल विरोध करना चाहता है पर खन्ना साहब उसको संकेत से रोक देते है।)** भलाई इसी मे है कि बटन लौटा दो।

रामलाल—यह आप क्या कह रहे है सरकार ! मै गरीब जरूर हूँ, पर चोर नही।

खन्ना—सभी ऐसा कहते है। देखो, अब बाते बनाना बेकार है। मै जानता हूँ, चोरी तुमने की है।

रामलाल— **(डरते-डरते)** आपने मुझे बटन उठाते देखा सरकार ?

खन्ना--मैंने नहीं, विमला ने देखा है। कहती क्यों नही तू ?

(खन्ना साहब विमला की ओर देखते हैं। विमला पहले तो आश्चर्यचकित रह जाती है फिर धीरे-धीरे सिर हिला देती है।)

खन्ना--बीमार बीवी के इलाज के लिए तुमने चम्पा, देवी और विमला से रुपए माँगे और जब किसी ने नहीं दिए तो बटन चुरा कर बेच आए। बताओ, किस सराफ के यहाँ बेचे है ?

रामलाल--**(रुद्ध कंठ से)** सरकार ! मैं भगवान् की सौगन्ध खाकर कहता हूँ मैंने बटन छुए तक नही। मेरे बाल-बच्चों को भगवान् उठा ले अगर मैंने बटन लिये हों। विमला बीबी को धोखा हुआ है।

खन्ना--**(उठकर रामलाल के दोनों गालों पर जोर से थप्पड़ मारते हुए)** चोरी करके सीनाजोरी करता है। विमला बीबी को धोखा हुआ होगा ! भगवान् ने आँखे नही दी है उसे ? सीधी तरह बता दे, बटन कहाँ बेचे है, नही तो खाल खीच लूंगा। **(एक थप्पड़ और मारते हुए)** बोल, बताता है कि नही ?

रामलाल--**(रोते हुए)** मैंने···मैंने···बटन···नही···नही लिये है···सरकार। मैंने चोरी नही की है। मै···मै···चोर···चोर नही हूँ।

(अन्दर से श्रीमती खन्ना का प्रवेश। विमला अपनी दृष्टि फर्श पर गड़ा देती है।)

श्रीमती खन्ना--यह क्या कर रहे हो ? क्यों मार रहे हो बिचारे को ?

खन्ना--**(क्रुद्ध होकर)** तुम जाकर अपना काम करो। तुम्हारी कोई चीज चोरी जाती तो मालूम होता ! जमीन-आसमान एक कर देती।

श्रीमती खन्ना--मगर किसी निर्दोष को मारती तो नहीं।

खन्ना--(**बिगड़कर**) कौन कहता है यह निर्दोष है ? मैं कहता हूँ, यह चोर है। इसी ने बटन चुराये हैं। (**रामलाल की ओर मुड़कर**) देख, मुझे यह बता दे, बटन कहाँ बेचे हैं ? अच्छा; यही, बता दे कितने में बेचे हैं ? मैं तुझे रुपया दे दूँगा और तू जाकर बटन ले आना। मैं अपने बटन चाहता हूँ, बस।

रामलाल--(**सिसकते हुए**) सरकार ! मैं सच कह रहा हूँ। मैंने बटन नहीं चुराये हैं। चाहे मुझे मार डालें सरकार, लेकिन जब मैंने लिये ही नहीं हैं तो बताऊँ कैसे !

खन्ना--(**मारने के लिए हाथ उठाते हुए**) ऐसे नहीं मानेगा तू।

श्रीमती खन्ना--(**बीच में आकर**) ठहरो। मैं पूछती हूँ। (**रामलाल की आँखों में देखते हुए अत्यन्त मृदु स्वर में**) मुझसे तो झूठ नहीं बोलोगे ?

(**रामलाल साश्रु नयनों से उनकी ओर देखता है और फिर नकारात्मक सिर हिलाता है।**)

श्रीमती खन्ना--(**उसी स्वर में**) बटन तुमने लिये हैं ? इधर, मेरी तरफ देखकर उत्तर दो।

रामलाल--(**उनकी ओर देखकर दृढ़ स्वर में**) नहीं बहूजी। भगवान् जानता है मैंने चोरी नहीं की है।

श्रीमती खन्ना--(**खन्ना साहब की ओर मुड़कर**) देखा ? यह मुझसे कभी झूठ नहीं बोल सकता। मैं कहती हूँ इसने बटन नहीं लिये हैं।

खन्ना--और मैं कहता हूँ, चोर यही है। जब मैं इंगलैंड में···।

श्रीमती खन्ना--बस, बस। रहने दो।

(**बाहर से कोई 'खन्नाजी' कहकर पुकारता है।**)

खन्ना—शायद, इंसपेक्टर साहब आ गए। (**रामलाल के पास जाकर**) अब भी समय है। बता दे।

(**रामलाल मौन रहता है। वह कातर दृष्टि से कभी श्रीमती खन्ना और कभी विमला की ओर देखता है। खन्ना साहब द्वार की ओर बढ़ते हैं। विमला खड़ी हो जाती है। खन्ना साहब पर्दा हटाकर झांकते हैं।**)

खन्ना—आ जाइए, अन्दर आ जाइए, इंसपेक्टर साहब।

इंसपेक्टर साहब—(**बाहर से ही**) अभी हाजिर हुआ साहब।

(**श्रीमती खन्ना और विमला अन्दर चली जाती हैं। बाहर से इंसपेटर साहब आते हैं। वे अपनी वर्दी में हैं और उनके हाथ में एक छड़ी है।**)

खन्ना—बैठिए। पान मँगाऊँ?

इंसपेक्टर साहब—(**बैठते हुए**) मैं पान नही खाता। कहिए, पता लगा कुछ?

खन्ना—(**बैठकर**) जी हाँ। चोर आपके सामने खड़ा है। आज से दो साल पहले यह मेरे पास रोता हुआ आया था। मैंने तरस खाकर इसे नौकरी दी और आज इसने मुझे यह बदला दिया है!

इंसपेक्टर साहब—(**रामलाल से**) क्यो बे उल्लू के पट्ठे। जिस थाली मे खाता है उसी मे छेद करता है!

रामलाल—(**रोकर**) सरकार! आप माई-बाप हैं। मैंने चोरी नही की है। मै चोर नही हूँ।

खन्ना—देखा आपने? इसे कलियुगी कहते है! पहले चोरी और फिर सीनाजोरी। बात यह है कि इसे पैसे की सख्त जरूरत थी और जब इसे कही से पैसे नही मिले तो मेरे बटन चुरा लिए। वैसे तो सौ-पचास रुपए हाथ का मैल है इंसपेक्टर साहब, लेकिन वे बटन

मुझे जान से ज्यादा प्यारे है। मैंने तो यहाँ तक कहा कि तू मुझसे रुपए ले जा और जिस सराफ के हाथ बेचे हो, उससे जाकर उन्हें लौटा ला। मगर यह है कि झूठ बोलने पर ही तुला है। कहता है, मैंने चुराये ही नही है।

इसपेक्टर साहब--(मूँछ पर ताव देते हुए) आप कुछ फिक्र न करे। मैने बडे-बडे शातिरो के होश ठिकाने लगा दिये है; यह है किस खेत की मूली! (रामलाल की ओर मुड़कर) क्यो बे, तूने बटन नही लिये है?

(रामलाल सिर हिलाता है।)

इसपेक्टर साहब--(उठकर रामलाल की कनपटी पर जोर से छड़ी मारते हुए) और झूठ बोलेगा गधे के बच्चे!

(रामलाल चोट से तिलमिला जाता है। उसकी कनपटी से रक्त निकलने लगता है। वह फूट-फूटकर रोता है।)

श्रीमती खन्ना--(अन्दर से तीव्र स्वर मे) यह शरीफो का घर है, पुलिस-चौकी नही। मै यह सब नही होने दूँगी।

(खन्ना साहब चौक जाते है। वे कभी इंसपेक्टर साहब और कभी अन्दरवाले द्वार की ओर देखते है।)

इसपेक्टर साहब--अपनी भूल पर मै शरमिन्दा हूँ खन्ना साहब। मै इसे थाने लिये जा रहा हूँ। अगर छः महीने से कम भिजवाया तो नाम बदल दूँगा। आप परेशान न हो।

खन्ना--लेकिन···· लेकिन मेरे बटन ····?

इसपेक्टर साहब--वे भी मिल जायगे। जहाँ कुछ भी न हो वहाँ मनचाही चीज बरामद करा देना मेरे बाँये हाथ का खेल है। (रामलाल से) सीधे चल मेरे साथ चौकी पर, नही तो हथकड़ी डालकर ले चलूंगा।

रामलाल--(**खन्ना साहब के पैरों पर गिरकर गिड़गिड़ाते हुए**) दया करो मालिक। मैं मर जाऊँगा; मेरे बाल-बच्चे मर जायगे!

खन्ना--(**रूखे स्वर मे पैर हटाते हुए**) मै क्या करूँ! एक बार दया की थी उसका फल भोग रहा हूँ।

इंसपेक्टर साहब--(**अपने स्थान से उठकर रामलाल को उठा कर द्वार की ओर ढकेलते हुए**) सीधी तरह चलेगा या नही?

(**रामलाल बाहर जाना है। इंसपेक्टर साहब भी द्वार की ओर बढ़ते हैं।**)

खन्ना--थोड़ी देर मे मै भी आ रहा हूं। तभी आपका हक ।

इसपेक्टर साहब--(**बीच में ही**) उसकी क्या जरूरत है। मै तो खादिम हूँ आप लोगों का।

खन्ना--(**हँसकर**) यह आपकी कृपा है। फिर भी · · ·।

(**इंसपेक्टर साहब हँसते हुए बाहर जाते है। अन्दर से श्रीमती खन्ना तथा विमला का प्रवेश।**)

श्रीमती खन्ना--(**क्रुद्ध स्वर मे**) यह क्या किया आपने? मै कहती हूँ, वह निर्दोष है। पुलिसवाले उसे न जाने क्या-क्या कष्ट देगे! छुड़ा लो उसे।

विमला--मुझे भी वह निर्दोष लगता है पिताजी! मै बेकार ही झूठ बोली! उसे बचा लीजिए।

खन्ना--यह सब बेकार की बाते है। अगर बटन उसने नही लिये तो किसने लिए है? मुझे बटन चाहिए, समझी?

श्रीमती खन्ना--इस तरह बटन क्या मिल जायगे?

खन्ना--क्यों नही? पुलिस का डडा पडते ही कबूल देगा।

श्रीमती खन्ना——उस पर नहीं तो उसकी बीमार पत्नी और छोटे बच्चे पर ही तरस खाओ। समझ लो कि बटन थे ही नहीं।

खन्ना——यह भी खूब कही! समझ लूँ की बटन थे ही नहीं!

विमला——सोने के ही तो थे पिताजी! हीरे-मोती के तो नहीं, जो उनके लिए इतना चिन्तित हुआ जाय।

खन्ना——तू भी पागल हो गई है क्या? सवाल मूल्य क नहीं, भावना का है। अगर मिट्टी के भी होते तो भी मुझे इसी तरह प्यारे होते!

(धोबी का प्रवेश। वह झुककर अभिवादन करता है।)

खन्ना——तू भी इसी समय आने को था! पहली के बाद आना। अभी मैं जल्दी में हूँ।

धोबी——**(जेब मे हाथ डालकर)** सरकार ⋯ ।

खन्ना——**(बिगड़कर)** जेब खाली है तो मैं क्या करूँ? पहली से पहले एक पैसा भी नही मिलेगा।

धोबी——**(जेब से हाथ निकालकर)** सरकार! मैं कुछ लेने नहीं, देने आया हूँ। **(सोने के बटन खन्ना साहब की ओर बढ़ाते हुए)** यह आपके कुर्ते मे लगे रह गए थे सरकार!

खन्ना——**(झपटकर बटन लेते हुए हकलाते स्वर में)** यह⋯ यह कुर्ते⋯ कुर्ते मे रह गए थे! **(विमला की ओर मुड़कर)** और तू⋯ तू तो कहती थी निकालकर अलमारी मे रख दिए थे! **(पुनः धोबी को सम्बोधित करते हुए)** जानता है तू, यह सोने के बटन है!

धोबी——**(गम्भीर स्वर में)** जानता हूं सरकार! लेकिन मेरे लिए मिट्टी के है।

(धोबी झुककर अभिवादन करता है और चला जाता है।)

श्रीमती खन्ना--(**तीव्र स्वर में**) देखा? जिन्हे तुम गरीब होने के नाते चोर और बेईमान समझते हो वे कैसे है! तुम शायद यह भूल जाते हो कि छोटे-बड़े सभी एक ही मिट्टी के बने है। तुम·····।

खन्ना--(**चीखकर**) अब बस भी करो। तुम तो·····!

श्रीमती खन्ना--(**उसी स्वर मे**) बस क्यो करूँ? तुम समझते हो कि बडे लोग सोने के बने है इसलिए दुनियाँ मे वे ईमानदार है, साधु है; गरीबो को तुम बेईमान और चोर समझते हो। (**विमला की ओर मुड़कर**) और तू·····! तू ही सब अनर्थ की जड है।

विमला--(**सिसकते हुए**) मुझे क्षमा····· क्षमा······ करो माँ।

श्रीमती खन्ना--(**खन्ना से**) अब खडे-खडे मेरा मुह देख रहे हो! थाने जाकर रामलाल को छुड़ाओ। (**रुद्ध कंठ से**) बेचारे की क्या दशा की होगी पुलिस ने!

खन्ना--(**द्वार की ओर बढ़ते हुए**) हाँ, हाँ। मै अभी जा रहा हूँ।

(**खन्ना साहब तीव्र गति से बाहर जाते है। श्रीमती खन्ना कभी बाहर और कभी अन्दरवाले द्वार की ओर देखती है।**)

श्रीमती खन्ना--(**एक निःश्वास छोड़कर**) लोग यह कब समझेगे कि सोना भी मिट्टी से निकलता है! दोनो मे कोई अन्तर नही····· कोई अन्तर नही!

(**श्रीमती खन्ना अन्दर की ओर बढ़ती है।**)

काला दाग़

पात्र—अकबर—मुगल-सम्राट् ।

दिलावर खा—मुगल-सरदार ।

रामसिह—राजपूत-सरदार।

मीरन बहादुर खा—खानदेश का शासक ।

सैनिक, एलची आदि ।

स्थान—खानदेश प्रान्त के अन्तर्गत असीरगढ़ दुर्ग के बाहर एक मैदान मे अकबर का शिविर।

समय—सन् १६०० ई० का एक प्रातःकाल।

(सामने की ओर एक बड़ी चौकी है, जिस पर जरी के काम का एक मोटा मखमली गद्दा बिछा है। कुछ गोल और लम्बे तकिए भी रखे हैं। इस चौकी के नीचे एक छोटी गोल चौकी है। इस पर भी गद्दी है। इसका प्रयोग पैर रखने के लिए होता है। दोनों किनारों पर पंक्ति में तीन-तीन चौकियाँ और हैं। इन पर भी मोटी गद्दियाँ हैं। ये सरदारों के लिए हैं। फर्श पर कालीन है। अकबर चिन्तित मुद्रा में टहलता हुआ दिखाई पड़ता है। वह वृद्ध हो चला है। बाल पक गये हैं। रेशमी वस्त्र पहने हैं। सिर पर सोने के काम की रेशमी पगड़ी है, जिस पर मोती जड़े हैं। पगड़ी में रत्नजटित छोटी-सी कलगी भी है। गले में मोतियों की माला है और कमर में तलवार है, जिसकी मूठ और म्यान जड़ाऊ हैं। दिलावर खाँ और रामसिंह हाथ जोड़े सिर झुकाये खड़े हैं। दोनों सैनिक वेश में हैं।)

अकबर—**(रुककर रामसिंह से)** तो तुम यह चाहते हो कि मैं यहाँ उम्र भर पड़ा रहूँ ?

रामसिंह—**(विनम्र स्वर में)** नहीं सम्राट् । मैं तो केवल इतना चाहता हूँ कि असीरगढ़ का दुर्ग तलवार के बल से लिया जाय।

अकबर—**(चिढ़कर)** तो ले क्यों नहीं लिया ? हम छ: महीने से किले को घेरे पड़े हैं; दिखाया क्यों नहीं तलवार का जोर ?

रामसिंह—सम्राट् !

अकबर—मैं कुछ सुनना नहीं चाहता। जो कुछ मैंने किया है, ठीक है ।

दिलावर खाँ—खता माफ हो तो कुछ मैं भी अर्ज करूँ आलीजाह?

अकबर—**(चौकी पर बैठकर)** कहो, क्या कहना चाहते हो ?

दिलावर खाँ—मीरन बहादुर खाँ की जगह अगर कोई और होता तो आपका कदम वाजिब होता जहाँपनाह।

अकबर—क्या मतलब है तुम्हारा ?

दिलावर खां—(**आगे बढ़कर अत्यन्त विनम्र स्वर में**) वह भी **खुदा** का बन्दा है आलमपनाह।

अकबर—सभी खुदा के बन्दे है।

दिलावर खा—लेकिन ·····लेकिन वह पाक इस्लाम को मानता ह। अगर कोई हिन्दू·····।

अकबर—(**बीच मे ही कठोर स्वर में**) दिलावर खा ! मेरे लिए हिन्दू-मुसलमान बराबर है। मै किसी मजहब को नही मानता। मेरा मजहब है सियासत·····समझे ? सियासत ! आयन्दा इस तरह की बात कभी जुबान पर न आए।

दिलावर खा—माफी चाहता हूँ आलीजाह।

अकबर—(**उठकर फिर टहलता हुआ**) रामसिह ! मै तुम्हारे बुलन्द ख्यालो की तारीफ करता हूँ। मगर·····मगर मै मजबूर हूँ। मेरी इज्जत·····मुगल-सल्तनत की इज्जत दाव पर है ! हम तलवार से असीरगढ का किला कभी भी फतह नही कर सकते।

रामसिह—क्यो सम्राट् ?

अकबर—यह बुरहानपुर नही है जो हंसते-हसते सर कर लिया जाय ! यह किला बहुत····· बहुत मजबूत है। मीरन बहादुर को इस किले की मजबूती पर नाज है। होना भी चाहिए ! वह जानता है कि हम लडकर किला नही ले सकते, तभी तो उसने मुगल-सल्तनत के खिलाफ सिर उठाने की जुर्रत की है।

रामसिह—किन्तु दुर्ग मे इतनी रसद तो होगी नही कि मीरन बहादुर उम्र भर लड़ता रहे। एक-न-एक दिन उसे झुकना ही पड़ेगा। यदि हम दो-चार महीने और·····।

अकबर—(**बीच में ही**) नही, रामसिह नही। यह नही हो

सकता। मैं बूढ़ा हो गया हूँ। मुझसे यह नही हो सकता। सोचो, मेरे लिए यह कितनी शर्म की बात है कि महीनो बाद भी मैं किला फतह न कर पाया। मुगलो की फौज और ताकत के लिए यह निहायत शर्म की बात है! मगर क्या करूँ? ताकत से न सही, तरकीब से ही सही; किला तो लेना ही है। यह इज्जत का सवाल है।

दिलावर खा—पर जो तरकीब आपने अपनायी है आलीजाह, वह तो और भी·····।

अकबर—तुम चुप रहो दिलावर खा। **(रामसिंह की ओर मुड़कर)** असीरगढ का किला लेना निहायत जरूरी है। यह दक्खिन का दरवाजा है। समझे? इसीलिए मैंने यह कदम उठाया है।

रामसिह—परन्तु इतिहास आपके नाम पर·····।

अकबर—**(बीच मे ही)** परवाह नही। हारकर वापस लौटने के मुकाबले कुछ तो मैंने किया है। तवारीख चाहे जो कहे! **(शिविर के द्वार तक जाकर बाहर झाँककर फिर लौटता हुआ)** अभी तक आया नही मीरन बहादुर, कही उसे कुछ शक तो नही हो गया?

रामसिह—वह आएगा अवश्य सम्राट्! आपकी बात पर अविश्वास का प्रश्न ही नही उठता। अब आपने मित्रता का हाथ बढ़ाकर उसे बुलाया है तब वह अवश्य आएगा।

अकबर—क्यो? तुम्हे इतना यकीन क्यो है?

रामसिह—क्योकि वह एक वीर पुरुष है।

अकबर—क्या वह अकेला आएगा?

रामसिह—अवश्य! इतना ही नही, वह तलवार तक नही लाएगा, आपने मित्रता का जो हाथ बढ़ाया है!

अकबर—**(हँसकर)** दोस्ती का हाथ! हा·····हा·····हा! दोस्ती का हाथ! यही दोस्ती का हाथ उसके लिए फांसी का फन्दा

बन जायगा अगर उसने हार मानकर किले का फाटक न खुलवाया।

रामसिंह—(**द्वार की ओर बढ़कर**) मैं उसे जानता हूँ सम्राट्। वह मृत्यु को गले लगा लेगा, पर हार नहीं मानेगा!

(**रामसिंह बाहर चला जाता है। अकबर क्रुद्ध दृष्टि से उसी ओर देखता रहता है। दिलावर खाँ मौन खड़ा है।**)

अकबर—(**तीव्र स्वर में**) दिलावर खा!

दिलावर खा—(**हाथ जोड़कर**) आलमपनाह।

(**नेपथ्य से तुरही का शब्द आता है।**)

अकबर—(**प्रसन्न स्वर में**) शायद वह आ रहा है। तुम बाहर जाओ दिलावर खा।

दिलावर खा—लेकिन आलीजाह, मेरा रहना बहुत जरूरी है। अगर उसने कुछ बदतमीजी की ·· ·!

अकबर—तुम फिक्र न करो। मेरी तलवार मेरे पास है। जाओ।

दिलावर खा—(**सिर झुकाकर**) जो हुक्म आलीजाह।

(**दिलावर खाँ का प्रस्थान। अकबर प्रसन्न है। वह अकड़कर चौकी पर बैठ जाता है। उसका बायाँ हाथ तलवार की मूँठ पर है और दाहिना मूंछ पर। बाहर से मीरन बहादुर खाँ आता है। वह नवयुवक है। शरीर गठा हुआ है और मुख पर तेज है। आँखे नुकीली हैं। शरीर पर कोई भी शस्त्र नहीं है।**)

अकबर—(**उसी मुद्रा में**) आ गए! मैं तो समझता था, नहीं आओगे!

मीरन बहादुर खा—(**गम्भीर स्वर में**) आपने गलत समझा था। मैं मौत के सामने भी जाने से नहीं डरता!

अकबर—(**व्यंग्य से**) बहुत दिलेर हो! (**छोटी चौकियों की ओर संकेत करके**) किसी भी चौकी पर बैठ जाओ।

मीरन बहादुर खा—यह चौकियाँ आपके गुलामो के लिए है, दोस्तो के लिए नही। (**हँसकर**) मै सिपाही हूँ। खड़े रहने का आदी हूँ। फरमाइए, कैसे याद किया है?

अकबर—(**उठकर**) मै असीरगढ़ का किला चाहता हूँ।

मीरन बहादुर खा—(**हंसकर**) ले लीजिए। मना कौन करता है! जिसके बाजू मे जोर होगा, असीरगढ उसी का रहेगा।

अकबर—बेकार की जग मुझे पसन्द नही। खून-खराबे से मै ऊब गया हूँ। असीरगढ मेरा है, मुगलो का है। मै उसे वापस चाहता हूँ, समझे?

मीरन बहादुर खा—नही।

अकबर—आज से करीबनौ साल पहले मैने अहमद नगर, गोल कुण्डा, बीजापुर और खानदेश के पास मुगल सल्तनत की मातहती मान लेने का सुझाव भेजा था। जैसा मैने अभी कहा—मुझे जग नापसन्द है, इसीलिए मैने ऐसा किया था। मुझे खुशी है कि तुम्हारे वालिद मरहूम ने अक्लमदी से काम लिया था और खानदेश को मेरे मातहत देकर सूबेदारी कबूल कर ली थी। उनकी मौत के बाद तुमने बगावत की।

मीरन बहादुर खा—यह बगावत नही, अपने हको की माँग है। खानदेश हमारा था और हमारा ही रहेगा।

अकबर—लेकिन तुम्हारे वालिद अली खा·····!

मीरन बहादुर खा—(**बीच में ही**) उनकी गलती की सजा उनकी औलाद नही भुगत सकती। उन्होने आपकी गुलामी मानी थी, मै नही मानता।

अकबर—(**कोमल स्वर में**) लेकिन इस जंगो-जेहाद से क्या फायदा!

खुद भी परेशान होते हो और रिआया को भी तकलीफ देते हो। मुगल-सल्तनत के आगे कब तक खड़े रह सकोगे तुम!

मीरन बहादुर खा—(**दृढ़ता से**) जब तक जिस्म में खून का एक कतरा भी बाकी रहेगा।

अकबर—जवानी अंधी होती है!

मीरन बहादुर खा—बुढ़ापा डाकू होता है!

अकबर—(**क्रुद्ध होकर**) यह न भूलो, किससे बात कर रहे हो!

मीरन बहादुर खा—आप भी न भूलें, किससे बात कर रहे हैं आप!

अकबर—मैं बहस करना नहीं चाहता। किला दोगे या नहीं?

मीरन बहादुर खा—मुगल-सल्तनत का मालिक क्या माँगने पर उतर आया है?

अकबर—गुस्ताख छोकरे! जबान संभालकर बात कर।

मीरन बहादुर खा—मैं आपकी बुजुर्गी का ख्याल कर रहा हूँ। अगर और कोई ऐसे लफ्ज कहता तो उसकी जुबान खींच लेता।

अकबर—(**ताली बजाकर**) यह जुर्रत! अभी चखाता हूँ मजा।

(**कुछ सैनिकों के साथ रामसिंह तथा दिलावर खाँ का प्रवेश।**)

अकबर—कैद कर लो इस गुस्ताख को।

(**सब मीरन बहादुर खाँ को पकड़कर बाँध देते हैं। वह छूटने का असफल प्रयास करता है।**)

अकबर—जाओ, अब तुम लोग।

(**सब जाते हैं।**)

अकबर—अब बोलो, किला दोगे या नहीं?

मीरन बहादुर खा—नहीं। किला लेना है तो लड़कर लो।

अकबर—रस्सी जल गई पर ऐंठन नहीं गई। अब तुम हमारी कैद में हो। जब तक किले का फाटक नहीं खुलता, तुम कैद रहोगे।

मीरन बहादुर खां—परवाह नही। यदि आप इस जिस्म के टुकड़े-टुकडे भी कर दे तब भी फाटक नही खुलेगा। एक मीरन बहादुर की मौत से क्या, खानदेश का बच्चा-बच्चा मीरन बनकर मुगलों का खून बहायेगा।

अकबर—मेरे पास ज्यादा रुकने का वक्त नहीं है, नही तो देखता तुम कितने बहादुर हो! रही खानदेश के बच्चे-बच्चे की बात, सो अभी मालूम हुआ जाता है। जरा किलेवालो को मालूम तो होने दो कि तुम कैद कर लिए गये हो! फाटक खुलते देर नही लगेगी।

मीरन बहादुर खा—आप भूलते है। फाटक नही खुलेगा।

अकबर—देखता हूँ!

(दिलावर खाँ का प्रवेश।)

अकबर—फाटक खुला?

दिलावर खा—नही, आलीजाह।

अकबर—इसके कैद होने की बात जानकर भी किसी ने फाटक नही खोला। **(चिन्तित होकर टहलते हुए)** ताज्जुब है!

मीरन बहादुर खा—**(हँसकर प्रसन्न स्वर में)** देख लिया आपने?

अकबर—**(तीव्र स्वर में दिलावर खाँ से)** फाटक के सिपाहियों पर चादी-सोने की बारिश कर दो। समझे? सारा खजाना लुटा दो। देखता हूँ, फाटक कैसे नही खुलता है!

(दिलावर खाँ का विद्युत्-वेग से प्रस्थान।)

मीरन बहादुर खा—**(चिन्तित स्वर में)** आप रिश्वत का सहारा गे?

अकबर—क्यो नही! सियासत मे सब कुछ जायज है।

मीरन बहादुर खा—**(घृणा से)** मुझे यकीन नही होता कि मुगल-सल्तनत का मालिक इतना हकीर है। इंसानियत का गला घोंटकर

जिन्दा रहनेवाले हैवान, तुझे क्या मिल जायगा इस नापाक काम से ?

अकबर—(**हँसकर**) असीरगढ़ का किला।

मीरन बहादुर खा—क्या उसे अपने साथ लेकर जायगा तू, जो बुढ़ापे मे यह हैवानियत कर रहा है ?

अकबर—अपने साथ तो कोई नही ले जाता। मैं उसे अपनी औलाद के लिए छोड़ जाऊँगा।

मीरन बहादुर खा—(**क्रुद्ध स्वर में**)औलाद ! औलाद ! औलाद के लिए तू अपनी सफेदी में स्याही लगा रहा है ? यह काला दाग तू तो क्या, तेरी औलाद की औलाद भी नही धो सकेगी। तवारीख तुझ पर थूकेगी।

अकबर—तवारीख बनानेवाला मैं हूँ। तवारीख मे मेरा नाम सुनहले हर्फो मे लिखा जायगा।

मीरन बहादुर खा—रिश्वत देकर तू यह भी करा सकता है।

(**नेपथ्य से घोष की ध्वनि आती है। रामसिंह और दिलावर खाँ तीव्र गति से अन्दर आते हैं।**)

दोनो—फाटक खुल गये।

अकबर—(**प्रसन्नता से**) मैं जानता था। चाँदी का जूता बहुत बुरा होता है ! तुम लोग जाओ।

(**दोनों का प्रस्थान।**)

मीरन बहादुर खां—(**आर्द्र स्वर में**) आह ! मेरे प्यारे असीर। अब मैं जिन्दा रहकर क्या करूँगा। (**अकबर से**) तलवार से मेरे टुकड़े-टुकड़े क्यों नही कर देता।

अकबर—नही, मेरे दोस्त ! तुम्हे मारने की जरूरत नहीं है। तुम मेरे सूबेदार बनकर यहीं रहोगे।

मीरन बहादुर खां—थू है ऐसी सूबेदारी पर। अगर तलवार

के जोर से किला लेता तो मुझे जरा भी रंज न होता। अब तो मेरा रोम-रोम तुझे बद-दुआ दे रहा है।

अकबर—(**हँसकर**) बद-दुआ! मैं बद-दुआओं से नही डरता।

मीरन बहादुर खा—बेकस की आह कभी खाली नही जाती। याद रख, तू जिस औलाद के लिए यह सब कर रहा है वही तेरी नहीं होगी। तू तो तू, तेरी औलाद की औलाद को भी औलाद का सुख नही मिलेगा। यह मेरी बद-दुआ है।

अकबर—(**हसकर**) और कुछ?

मीरन बहादुर खा—मुगलो की औलाद हमेशा अपने बाप के खून की प्यासी रहेगी।

(**अकबर खुलकर हँसता है। बाहर से एक एलची आता है। वह बुरी तरह हाँफ रहा है।**)

एलची—खता माफ हो, आलीजाह शाहजादा सलीम·····।

अकबर—(**घबराकर**) खैर तो है? क्या हुआ शाहजादे को?

एलची—शाहजादा सलीम ने·····।

अकबर—(बीच में ही व्यग्रता से) बोलता क्यों नही? क्या किया शाहजादा सलीम ने?

एलची—जहापनाह, उन्होने बगावत कर दी है।

अकबर—(**घबराकर**) क्या बक रहा है?

एलची—ठीक कह रहा हूँ आलमपनाह। इलाहाबाद में उन्होंने आजाद बादशाह होने का एलान कर दिया है। मैं दिन-रात एक करके खबर देने आया हूँ।

अकबर—(**तेजी से**) उसकी इतनी जुर्रत! दिलावर खा और रामसिह से कहो कि फौज को कूच करने का हुक्म दें। हमे जल्द-से-जल्द वहाँ पहुँचना है।

(एलची सिर झुकाकर चला जाता है।)

मीरन बहादुर खा—(हंसकर) देखा मेरी बद-दुआ का असर?

अकबर—(परेशानी के स्वर में) चुप रहो, मीरन चुप रहो। (उसके बन्धन खोलते हुए) मैं बहुत परेशान हूँ। वाकई, यह काला दाग·····ओह, मुझे लग रहा है जैसे यह बढता जा रहा है·····बढता जा रहा है और सारा मुगल-खानदान उससे ढक गया है। ओह, यह काला दाग·····काला दाग·····।

(वह अपने हाथों से आँखें बन्द करके चौकी पर गिर-सा पड़ता है। मीरन बहादुर खाँ उस ओर विचित्र दृष्टि से देखता रहता है। उसके मुख पर मुस्कान है। धीरे-धीरे यवनिका गिरती है।)

रथ के पहिये

पात्र—रंजन—पाश्चात्य सभ्यता का प्रेमी, अवस्था ३० वर्ष।
लिली—रंजन की पत्नी, अवस्था २५ वर्ष।
कचन—लिली का ममेरा भाई, अवस्था २७ वर्ष।
वीना—एक विवाहित युवती, रजन की मित्र, अवस्था २४ वर्ष।
दासी आदि।

स्थान—रंजन के बँगले का लान।

समय—जून की एक शाम।

(लान सुन्दर है। फर्श पर हरी-हरी दूब है। इधर-उधर कुछ फूलों के गमले रखे हैं। मध्य में एक हलकी मेज है, जिसके आस-पास बेत की हलकी कुर्सियाँ हैं। मेज पर कवर है और कुर्सियों पर गद्दियाँ। पीछे बँगले का बरामदा दिखाई पड़ रहा है। वहाँ भी गमले हैं। दर्शकों की ओर मुख किए लिली बैठी है। वह सुन्दर युवती है। श्वेत साड़ी और रंगीन ब्लाउज पहिने है। न न क में कील है और न कानों में टाप्स। हाथों में दो-दो चूड़ियाँ हैं। वह कोई पत्रिका पढ़ रही है। कभी-कभी पढ़ना बन्द करके वह पत्रिका से पंखे का भी काम लेने लगती है। मेज से कुछ हटकर कोने में एक छोटे स्टूल पर सुराही रखी है। समीप ही शीशे का गिलास भी है। लिली उठकर जल पीती है और फिर अपने स्थान पर बैठ जाती है। सामने से दासी आती है।)

दासी—साहब का फोन आया था। कहा है कि वे वीना के साथ घंटे भर मे आ रहे है। खाना तैयार रहे।

लिली—**(पत्रिका मेज पर पटककर)** क्या कह दिया तूने?

दासी—कहती क्या! कह दिया, ठीक है।

लिली—ठीक है तो फिर तू ही बना। मुझसे तो नही होता यह सब। यहाँ अपना हीं खाना बनाना मुश्किल है, वीना, नीना, शीला, नीला, कम्मो, शम्मो के लिए कौन बनाये! रोज किसी-न-किसी को ले ही आते है।

दासी—**(आँखे मटकाकर)** और उन लोगों के मर्दए भी कैसे हैं जो पराये मर्द के साथ भेज देते है!

लिली—आजकल का यही फैशन है।

दासी—अच्छा! तो फिर आप क्यों नही जाती किसी के साथ? साहब भी तो नही ले जाते आपको कही!

लिली—जा, जा, तू अपना काम कर। बातें बनाना बहुत सीख गई है। अब खाना बना जाकर।

दासी—वह तो बनाना ही पड़ेगा। वीना देवी आ रही है। **(मुंह बिचकाकर)** नाम देवी और करम·····!

लिली—**(बीच मे ही)** जाती है या नही?

दासी—जाती हूँ, जाती हूँ।

(दासी चली जाती है। लिली फिर पत्रिका पढ़ने की चेष्टा करती है, किन्तु पढ़ नहीं पाती। वह खिन्न हो उठी है। दाहिनी ओर से कंचन आता है। वह अपटू-डेट युवक है। शार्क स्किन का श्वेत सूट पहिने है। जूता भी सफेद है। गोरे रंग पर श्वेत वस्त्र बहुत भले लग रहे है।)

लिली—**(प्रसन्नता से)** ओह, कचन भाई! कैसे रास्ता भूल गये! आओ, बैठो।

कचन—**(बैठकर)** बम्बई जा रहा हूँ। यहाँ से दो घटे बाद गाडी मिलेगी। सामान स्टेशन पर छोडकर तुम्हे देखने चला आया।

लिली—बहुत-बहुत धन्यवाद! मामाजी और मामीजी तो ठीक है? और वह चचल मिम्मी तो अब बड़ी हो गई होगी! शादी कब कर रहे हो? क्या सरला पसन्द नही आई?

कचन—**(हँसकर)** तुमने तो एक साथ कई प्रश्न पूछ लिये। सब प्रसन्न है। मिम्मी और भी शैतान हो गई है। सरला ठीक नही थी; दूसरी लड़की मे बातचीत चल रही है। उसी को देखने जा रहा हूँ बम्बई।

लिली—ओह, यह बात है! अच्छा, देखो अपनी शादी मे बुलाना न भूलना।

कंचन—(**हंसकर**) तुमने नही बुलाया था तो क्या समझती हो मैं भी नही बुलाऊँगा!

लिली—(**कृत्रिम रोष से**) मैंने नही बुलाया था कि तुम्ही नही आये थे! मैं जानती हूँ तुम आना ही नही चाहते थे, परीक्षा का तो केवल बहाना था।

कचन—नही, ऐसी बात नही थी। परीक्षा की वजह से नही आ सका था। रजनजी है कहाँ? उनके दर्शन तो कर लूँ।

लिली—वे घूमने गए है।

कचन—घूमने? अकेले गये है! कैसे आदमी है! आने तो दो जरा वह खरी-खोटी सुनाऊँ कि छठी का दूध याद आ जाय। समझ क्या रखा है उन्होने?

लिली—अरे कही ऐसा न कर बैठना! वह यही समझेगे कि मैंने शिकायत की है।

कचन—समझने दो। पति और पत्नी गृहस्थी के रथ के दो पहिये है। दोनो के साथ-साथ चलने से ही रथ आगे बढ़ सकेगा।

लिली—शादी से पहिले तो सभी ऐसा कहते है पर शादी के बाद न जाने क्या हो जाता है! मै जानती हूँ तुम भी बदल जाओगे।

कंचन—(**हंसकर**) क्या घासलेटी माल समझ रखा है मुझे? मै जैसा हूँ वैसा ही रहूँगा।

लिली—वैसे तो सभी रहते है; पर वह रूप केवल बाहर के लिए ही होता है, घर का रूप बदल जाता है।

कचन—रंजनजी की रूप-रेखा वर्णन कर रही हो शायद!

लिली—सभी पुरुष एक-से होते है।

कचन—भूलती हो! खैर, मुझे जरा रजनजी के बारे में विस्तार से बताओ। आदमी दिलचस्प मालूम होते है! शायद बाहर नारी-

स्वतन्त्रता का नारा बुलन्द करते होंगे और यहाँ घर में तुम्हें ·····।

लिली—नही ऐसी बात तो नही है।

कंचन—अरे, मै ज्योतिषी हूँ! मुझसे कुछ नही छिपा रह सकता। **(गंभीर स्वर में)** लिली! तुम्हे मेरे सिर की सौगन्ध। सच-सच बता दो क्या बात है?

लिली—क्या बता दूँ! मै खुद बाहर जाना पसन्द नही करती।

कचन—झूठ है यह। एक ग्रेजुएट लडकी के मुख से निकले इन शब्दो पर कोई भी विश्वास नही करेगा। लिली! मुझसे सचाई को छिपाकर तुम भूल कर रही हो। शायद मै कुछ कर सकूँ। बताओ, क्या बात है?

लिली—कोई विशेष बात नही है।

कंचन—साधारण ही सही, पर बताओ तो।

लिली—बात यह है कि वे पश्चिमी सभ्यता के अनन्य भक्त है। डान्स, डिनर और ड्रिक तक ही जीवन क सार्थकता को सीमित समझते है।

कचन—**(चिढ़ाने के आशय से)** आदमी तो समझदार है।

लिली—**(चिढ़कर)** तभी तो मैने कहा था कि सब पुरुष एक-से होते है। क्या दूसरे की पत्नियो के साथ उनके पतियो की अनुपस्थिति में आधी-आधी रात तक शराब पीना और नाचना समझदारी है? क्या दूसरी स्त्रियो को अपने घर मे लाकर उनके सामने अपनी पत्नी का निरादर करना समझदारी है? बोलो, मै तुम्ही से पूछती हूँ। तुम इसे समझदारी कहते हो?

कंचन—यह समझ का नही सभ्यता का दोष है। पश्चिमी सभ्यता में इसे बुरा नही मानते।

लिली—वाह री पश्चिमी सभ्यता! अँग्रेज तो चले गए पर हम अँग्रेजियत को अब भी सीने से लगाए बैठे है।

कंचन—यही तो सबसे बडा मजाक है। पर पत्नी की उपेक्षा और उसका निरादर तो किसी भी सभ्यता में प्रशंसनीय नही है। पश्चिमी सभ्यता तो नारी को समान अधिकार देती है। जब रंजन जी उस सभ्यता के पुजारी है तब तुम भी अपने अधिकारो के लिए क्यो नही लड़ती? तुम भी क्लबों मे जाकर डान्स क्यो नही करती?

लिली—क्या तुम यह पसन्द करोगे कि तुम्हारी बहन इस प्रकार का जीवन व्यतीत करे?

कंचन—मुझे गलत न समझो लिली। विष का इलाज विष से ही होता है! हर पुरुष दूसरे की पत्नी को एडवान्स देखना चाहता है क्योकि इससे उसके स्वार्थ की सिद्धि होती है। कोई भी अपनी पत्नी को उस रूप मे नही देखना चाहता। जब तुम भी वैसा ही जीवन अपनाओगी तब रजन की आँखे खुलेगी और फिर गृहस्थी का यह रथ सुख और शान्ति के राजमार्ग पर आ जायगा, क्योकि दोनों पहिये फिर साथ-साथ आगे बढेंगे।

लिली—बात तो तुम्हारी ठीक मालूम होती है। मैंने जब-जब साथ जाने का अनुरोध किया, तब-तब वे टाल गए। उन्होने यही कहा कि यह जीवन स्त्रियो के लिए नही, पुरुषो के लिए ही है।

कचन—हर पुरुष यही सोचता है। पर मजाक यह है कि वह अपनी पत्नी को ही स्त्री समझता है, औरो की पत्नियाँ उसकी दृष्टि मे खिलौनामात्र होती है। यदि तुम मेरे कहने पर चलो तो दूसरे दिन ही सब ठीक हो जाय।

लिली—यह तो ठीक है, पर·····पर मै क्लब का जीवन

एक दिन भी नही बिता सकती। उस नरक से तो दूर रहना ही अच्छा है!

कंचन—अच्छा क्लब लाइफ न सही, अभिनय तो कर सकती हो।

लिली—अभिनय?

कचन—हाँ अभिनय। तुम्हे तो कालेज मे कई पुरस्कार भी मिले थे नाटको मे!

लिली—हाँ, मिले थे, पर तुम्हारा मतलब क्या है?

कचन—वह भी पीछे बताऊँगा, पहले यह बताओ कि रंजन जी कितनी देर मे आयेगे?

लिली—किसी वीना को साथ लेकर आने ही वाले है। अभी फोन आया था भोजन तैयार रखने के लिए।

कचन—ठीक है। कोई नौकर है?

लिली—दासी है। बुलाऊँ?

कचन—हाँ। और देखो, तुम उससे कुछ न कहना, बात मै करूँगा। बुलाओ उसे।

(लिली दासी को आवाज देती है। दासी आती है। वह कंचन की ओर अजीब दृष्टि से देखती है।)

कंचन—हम लोग जरा ड्रिक करने जा रहे है। अगर रजनजी आ जायँ तो कह देना कि अभी आती है बहूजी।

(दासी लिली की ओर देखती है। वह मौन है।)

कंचन—**(लिली का हाथ पकड़कर)** अब चलो भी लिली। वर्षो बाद तो आज भेट हुई है। शादी के बाद तो मुझे भूल-सी गई थी। आज बदला चुका लूँगा।

(दोनों बाहर चले जाते है। दासी विचित्र दृष्टि से उधर देखती

रहती है। उसके मुख पर आश्चर्य के चिह्न हैं। वह सुराही से जल लेकर अपने मुख पर छींटे मारती है। फिर आँचल से मुंह पोंछकर अन्दर की ओर बढ़ती है। घूम-घूम कर वह सामने की ओर देखती जाती है। तभी उसकी ठोकर से एक गमला गिर जाता है। वह घबराकर उसे ठीक करती है। बाहर से कार की आवाज आती है। एक क्षण बाद ही रंजन वीना का हाथ पकड़े आता है। दोनों कुछ नशे में हैं। रंजन मक्खनजीन का पेंट और सफेद कमीज पहने है। उसके बाल घुंघराले हैं। वीना दुबली-पतली युवती है। नाक कुछ लम्बी है। वैसे सुन्दर है। जार्जेट की साड़ी और रेशमी ब्लाउज पहने है। चेहरे का मेकअप काफी गहरा है। दोनों बैठ जाते हैं। दासी घबराकर पास आती है और हाथ जोड़कर खड़ी हो जाती है।)

रजन—खाना तैयार है?

दासी—अभी नहीं।

रंजन—(**गरजकर**) क्यों? फोन कर दिया था फिर भी नहीं।

दासी—(**बड़बड़ाती हुई**) मैं अकेले क्या-क्या कर लेती?

रजन—अकेले! क्यों लिली ने नहीं किया कुछ?

दासी—वे उसके पास बैठी रहीं।

रंजन—किसके पास?

दासी—मुझे नहीं मालूम, कोई दोस्त था शायद!

रजन—(**क्रुद्ध स्वर में**) दोस्त? कहां है लिली?

दासी—उसी के साथ गयी है।

रजन—कहां?

दासी—ड्रिंक करने।

रजन—(**उठकर दासी के गाल पर तमाचा मारकर**) यह क्या बक रही है? लिली कभी ऐसा नहीं कर सकती। सच बोल, कहां है वह?

दासी—(**सिसकते हुए**) कह तो दिया मैंने।

वीना—उसे क्यो मारते हो डियर? (**दासी से**) जा, भाग जा तू। डियर, कोई बात नही। हम होटल में खा लेगे!

(**दासी अन्दर चली जाती है। रंजन कुर्सी पर गिर-सा पड़ता है। उसका नशा हिरन हो गया है।**)

वीना—(**उसकी कुर्सी की भुजा पर टिककर**) मुझसे नाराज हो डियर? क्या मैंने ज्यादा पी ली है?

रजन—(**संयत होकर**) नही, नही, नाराज नही हूँ। नशे में तुम और भी अधिक सुन्दर लगती हो वीना! सच पूछो तो सुरा सुन्दरियों के लिए ही है।

वीना—(**मादक स्वर मे**) मैं सुन्दर हूँ! सच कह रहे हो डियर?

रजन—यस डार्लिग।

वीना—(**रंजन की भुजा में लिपटकर**) यू आर माई नाटी लिटिल ब्वाय। अच्छा, अगर मेरे हस्बैंड अभी आ जायँ तो क्या हो?

रजन—हे: क्या! दिस इज लाइफ आफ टुडे। मिस्टर लाल मिसेज शर्मा के साथ बोटिंग कर रहे होगे। वे यहाँ क्यो आयेगे?

वीना—दैट इज राइट! यही जिन्दगी है। मिसेज शर्मा ऐंड माई हस्बैंड, आई ऐंड यू, योर लिली ऐंड·····! ओह, क्या नाम है तुम्हारी वाईफ के फ्रेंड का?

(**बाहर से लिली और कंचन का प्रवेश। दोनों प्रसन्न मुद्रा में है। कंचन लिली को अपने हाथ का सहारा दिए है।**)

वीना—ओह, यह है लिली का फ्रेंड! गुड ज्वायस! काग्रेचुलेशन्स लिली!

लिली—थैंक यू। (**कंचन से**) आओ तुम्हारा सबसे परिचय करा दूं। (**रंजन की ओर संकेत करके**) यह है मेरे हस्बैंड! बहुत

लिबरल और एडवांस्ड। **(वीना की ओर मुड़कर)** यह है मेरे हस्बैंड की अनेक मित्रों में से एक और **(दोनों से)** यह है मेरे ओल्ड···!

रंजन—**(चीखकर)** लिली!

लिली—**(रंजन के पास जाकर)** क्या है डियर? पीकर बहके तो मजा ही क्या! मुझे देखो! काफी पी है! **(कंचन की ओर मुड़कर)** क्या चीज थी वह? मैं तो नाम ही भूल गई!

कचन—जानीवाकर! लिली, अब तुम आराम करो जाकर। थक गई होगी! कल फिर आऊँगा।

लिली—**(हाथ नचाकर)** वाह! मुझे गुडिया समझ रखा है क्या? अभी घटो नाच सकती हूं! और फिर उन टिकटो का क्या होगा?

कचन—तुम टिकटो की फिक्र न करो! सिनेमा कल देख लेंगे।

लिली—नही, मैं आज ही चलूँगी।

कचन—चलो, मगर मिस्टर रजन से तो पूछ लो।

लिली—ओह मिली ब्वाय। यू डोंट नो माई हस्बैंड! यह बहुत फारवर्ड व्यूज के है। पूछने की जरूरत नही। यह अपने मित्रों के साथ घूमते है और मैं अपने मित्रो के साथ घूमने के लिए आजाद हूँ। यही तो लाइफ है, यही तो माडर्न फैशन है। **(रंजन के ऊपर झुककर)** है न डियर?

(रंजन क्रोध से काँप रहा है। वह आवेश मे आकर लिली के दोनों कन्धे पकड़कर हिला डालता है।)

कंचन—यह क्या कर रहे है आप?

रंजन—गेट आउट फ्राम हियर।

वीना—**(उठकर रंजन का हाथ पकड़कर)** सिट डाउन डियर।

रंजन—छोड़ दो मुझे वीना।

कंचन—(**लिली से**) तुम तो कहती थी तुम्हारे हस्बैंड बहुत लिबरल है! मैं कहता हूँ यह जानवर है, जानवर।

रंजन—(**कंचन की ओर झपटकर**) निकलता है यहाँ से या नहीं? लोफर, आवारा! पराई पत्नी को शराब पिलाकर बहकाना कहाँ की शराफत है? मैं तुझे पुलिस में दे सकता हूँ!

कंचन—अगर आप मुझे पुलिस में दे सकते हैं तो वीना देवी के पति आपको भी पुलिस में दे सकते हैं। (**हँसकर**) यह सब बेकार की बातें हैं! कौन किसे पुलिस में देता है! हम गुनाह नहीं करते हैं! यह तो आज की सभ्यता है। यदि आप दूसरों की पत्नियों के साथ घूम सकते हैं तो दूसरे आपकी पत्नी के साथ .....!

(रंजन का तमाचा कंचन के गाल पर पड़ता है। वीना घबरा कर बाहर भाग जाती है। लिली कभी कंचन और कभी रंजन की ओर देखती है।)

कंचन—मैं आप पर हाथ नहीं उठाऊँगा। मुझे आपकी बुद्धि पर तरस आता है! आप अभी अधूरे साहब हैं।

रंजन—(**बिगड़कर**) ऐसे साहबपन पर थू है। अगर अपनी खैर चाहते हो तो निकल जाओ यहाँ से। समझे, नहीं तो मैं तुम्हारा गला घोट दूँगा। मैं पागल हो रहा हूँ।

(अन्दर से दासी का प्रवेश)

दासी—(**मन्द स्वर में डरती हुई**) साहब, शीला देवी का फोन आया है। पूछ रही है, आज क्लब में आइएगा?

रंजन—(**बिगड़कर**) नहीं, नहीं, नहीं। कह दे मैं कभी नहीं आऊँगा। समझी? और यह भी कह दे कि मेरे घर भी कभी आने का कष्ट न करे।

(दासी जाती है। बाहर से फिर वीना आती है।)

वीना—झगडा निबट गया! डियर, चलो न डिनर के लिए। प्रामिज भूल गए क्या?

रजन—**(कठोर स्वर मे)** यू प्लीज गो अवे।

वीना—**(आश्चर्य से)** ह्वाट?

रंजन—यस। मै आप लोगो मे कोई वास्ता नही रखना चाहता। जाइए, चली जाइए यहाँ से।

वीना—**(पैर पटककर बाहर जाती हुई)** यू इन्सल्टिंग बीस्ट आई हेट यू।

रजन—यू गो टू हेल।

(वीना का क्रुद्ध मुद्रा में प्रस्थान)

रजन—**(कंचन से)** अब तुम्हारी बारी है। निकलो यहाँ से।

कचन—**(मुस्कराकर)** अच्छा, तो अब लिली इतनी प्यारी हो गई कि उसके और अपने बीच मे किसी और को देखना ही नही चाहते?

रजन—जी हाँ! ऐसा ही समझ लो।

कचन—तब ठीक है! **(लिली से)** अच्छा अब चलता हूँ! ट्रेन का समय हो गया है। मैने अपना काम कर दिया। रथ के पहिए ठीक हो गए है। आगे तुम जानो तुम्हारा काम जाने।

(बाहर जाने के लिए बढ़ता है।)

लिली—ठहरो तो। तुम दोनो का ··· !

कचन—**(बीच मे ही)** बम्बई मे लौटकर।

(कंचन चला जाता है। लिली उधर बढती है पर रंजन उसका हाथ पकड़ लेता है।)

लिली—छोडिए मेरा हाथ

रजन—बहुत प्यार है उससे?

लिली—हाँ।

रंजन—**(हाथ छोड़कर)** ठीक है। मैं इसी योग्य हूँ। मेरी उपेक्षा का उचित ही फल मिल रहा है मुझे। तुमने मुझे लिबरल बताया था! हाँ, मैं लिबरल होकर दिखा दूँगा। तुम दोनो सुखी रहो! तुम्हारी दुनियाँ मे मैं फिर कभी नही आऊँगा।

(बाहर की ओर बढ़ता है।)

लिली—जाने से पहले यह तो जान लो वह कौन है।

रजन—कोई आवश्यकता नही।

(और आगे बढ़ता ह।)

लिली—वह मेरा भाई कचन है।

रंजन—**(मुड़कर आश्चर्य से)** सच? मेरी समझ मे तो कुछ नही आया! वही कचन जिसका तुम अक्सर जिक्र करती थी?

लिली—हाँ! आपकी समझ मे नही आएगा। अच्छा, यह बताइए, हम दोनो का अभिनय पसन्द आया?

रंजन—अभिनय? ओह, अब मैं उसकी पहिएवाली बात समझा! **(समीप आकर)** तो यह सब अभिनय मुझे रास्ते पर लाने के लिए किया गया था? मुझे माफ कर दो लिली। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि अब दोनो पहिए साथ-साथ चलेंगे।

लिली—तब तो हमारा रथ निरन्तर आगे बढता जायगा।

रंजन—हाँ! गृहस्थी का यह रथ जिसके पहिए है मैं और तुम—पुरुष और नारी! **(लिली का हाथ पकड़कर)** चलो अन्दर चलें। दासी ने भोजन तैयार कर लिया होगा; आज हम एक साथ भोजन करेंगे!

(दोनों एक-दूसरे का हाथ पकड़े अन्दर जाते है। उनकी पीठ दर्शकों की ओर है। तभी धीरे-धीरे यवनिका गिरती है।)

पैसा, लड़की और जनसेवा

पात्र—राधा—एक विधवा, अवस्था ४० वर्ष।

चम्पा—एक विधवा, अवस्था २५ वर्ष।

दीनानाथ—हिन्दू विधवाश्रम तथा अनाथालय के मैनेजर, अवस्था ४५ वर्ष।

राजनारायण—सस्ता विवाह-मडल के अध्यक्ष, अवस्था ४० वर्ष।

हरिहर—एक निर्धन बेकार युवक, अवस्था २५ वर्ष।

निर्मला—हरिहर की पत्नी, अवस्था २१ वर्ष।

लक्ष्मीनारायण—एक धनी सेठ, अवस्था ५० वर्ष।

पुलिस इन्सपेक्टर, सिपाही, स्त्रियाँ, बच्चे आदि।

स्थान—आश्रम का कार्यालय।

समय—प्रातःकाल।

(कार्यालय साधारण है। सामने एक बड़ी मेज है, जिस पर कलमदान, पेपरवेट, ऐशट्रे तथा फोन रखे हैं। तीन ओर तीन कुरसियाँ हैं। सामनेवाली कुर्सी मैनेजर की है। पास ही एक रैक है जिस पर कुछ रजिस्टर रखे हैं। सामने की दीवार पर एक चित्र है, जो कदाचित् गाँधीजी का है, किन्तु उस पर धूल इतनी है कि ठीक से पहचानने में नहीं आता। कार्यालय के दाएं-बाएं एक-एक द्वार है। प्रथम बाहर तथा दूसरा आश्रम के अन्दर जाने के लिए है।

परदा उठते समय राधा मेज साफ करती हुई दिखाई पड़ती है। उसके हाथ में झाड़न है। श्वेत वस्त्र पहने है। बाल कुछ-कुछ पक चले हैं। मुख पर भी ढलती अवस्था के कुछ चिह्न हैं। उसकी वेशभूषा युवतियों के समान है। दाँतों में मिस्सी और आँखों में सुरमे की काली रेखाएं जैसे निरन्तर भागते हुए यौवन को बाँधने का असफल प्रयासमात्र है। मेज साफ करके वह एक आलोचनात्मक दृष्टि कार्यालय पर डालती है और फिर संतोष की साँस लेकर अन्दरवाले द्वार के समीप जाकर खड़ी हो जाती है। अन्दर से हंसी की ध्वनि आती है।)

राधा—चम्पा! अभी ठीक नही कर पाई क्या? मैनेजर साहब आते ही होंगे।

चम्पा—(अन्दर से) बस एक फूल और लगाकर अभी लाई दीदी।

राधा—(व्यग्रता से) जल्दी कर, नही तो·····।

चम्पा—(अन्दर से ही) क्यों डरती हो, दीदी? मैनेजर साहब फांसी पर थोड़े ही चढा देंगे!

राधा—तुझे चाहे न चढाएं, पर मुझे तो जरूर चढ़ा देंगे।

(चम्पा का प्रवेश। वह सुन्दर कही जा सकती है। वस्त्र श्वेत है।)

चम्पा—(हाथ का फूलदान मेज पर रखकर) यह लो अपना फूलदान।

राधा—**(हंसकर)** मेरा क्यों है ? मैनेजर साहब का क्यों नही कहती ?

चम्पा—**(मुसकराकर)** किसी का भी हो; मैं तो तुम्हारी आज्ञा से ही रोज लाती हूँ।

राधा—**(गम्भीर स्वर में)** चम्पा ! कभी मैं भी यही—इसी मेज पर—रोज फूलदान रखती थी। समय-समय की बात है। आज वह अधिकार तेरा है। हो सकता है कल किसी और का हो जाय !

चम्पा—**(घबराकर)** यह क्या कहती हो दीदी ?

राधा—ठीक कह रही हूँ। आज तू सुन्दर है, जवान है। मेरी बात मान। किसी बड़े सेठ के साथ भाग जा। जीवन भर मौज करेगी। नही तो एक दिन जब तेरा रूप नष्ट हो जायगा तब तू दो-चार सौ मे किसी के हाथ बेच दी जायगी। इन्ही आँखो से बहुत-कुछ देख चुकी हूँ।

चम्पा—**(व्याकुल स्वर में)** तुम तो मुझे डराए दे रही हो।

राधा—तू अभी नादान है। साल भर ही तो हुआ है तुझे यहाँ आए ! तू तो मैनेजर साहब को देवता समझती है, देवता ! मुझसे पूछ।

चम्पा—**(हंसकर)** होगा ! अभी तो चैन से कट रही है। आगे की कौन सोचे !

(नेपथ्य से किसी की पदचाप आती है।)

चम्पा—मैं चली। मैनेजर साहब आ गए शायद !

(चम्पा अन्दर जाती है। बाहर से दीनानाथ आते हैं। वह धोती कमीज और लम्बा कोट पहने हैं। सिर पर काली टोपी है। हाथ

में छड़ी है। छड़ी एक कोने में रखकर वह सामने लगे चित्र को हाथ जोड़ते हैं; फिर टोपी मेज पर रखकर कुर्सी पर बैठ जाते हैं। राधा उसी प्रकार खड़ी रहती है।)

दीनानाथ—**(फूलदान से गुलाब का एक फूल निकालकर सूंघता हुआ)** फूल तो बहुत अच्छा है राधा!

राधा—ताजा है न! **(मुस्कराकर)** लेकिन गुलाब में काँटा भी होता है।

दीनानाथ—**(हंसकर)** मैं काँटे को भी फूल बना लेने की क्षमता रखता हूँ। तुम मेरी चिन्ता न करो राधा! **(विषय बदलकर प्रसन्न स्वर में)** तुम्हे एक शुभ समाचार सुनाना है। सेठ लक्ष्मी-नारायण ने आश्रम को दस हजार रुपए देने का वचन दिया है।

राधा—**(व्यंग्य से)** आश्रम को या आपको?

दीनानाथ—**(व्यंग्य पर ध्यान न देकर)** मैं और आश्रम क्या भिन्न-भिन्न है? मेरे पूज्य पिता ने इसकी स्थापना की थी। ३० वर्षों से मैं इसकी सेवा कर रहा हूँ।

राधा—**(हंसकर)** जानती हूँ। २५ वर्षों से मैं भी तो यही हूँ। पर यह तो बताइए, इतना रुपया आप रखेंगे कहाँ?

दीनानाथ—जिसकी कृपा से रुपया मिलता है उसी की कृपा से रखने का स्थान मिल जायगा। और फिर लक्ष्मी तो अपना स्थान स्वयं बना लेती है। मैं सेवा का व्रती हूँ। जाति और धर्म की सेवा करना मेरा ध्येय है। फिर सहायकों का क्या अभाव!

राधा—ठीक है। महान् उद्देश्य जो ठहरा!

दीनानाथ—**(कोमल स्वर में)** राधा! रुपया तो आज मिल सकता है पर वह पापी सेठ कन्नी चाहता है, कली! अपने आश्रम में चम्पा के अतिरिक्त जो है वे सब-की-सब·····! चम्पा को मैं जितना

चाहता हूँ वह तुमसे छिपा नही है। हाँ, यदि तुम सहायता करो तो काम बन सकता है।

राधा—कैसे ?

दीनानाथ—आज कार्तिक पूर्णिमा है। गगा-घाट पर भारी जमघट होगा। ऐसे मे एक-आध भोली युवती का खो जाना असम्भव नही और भूले हुए को राह पर लाना तुम्हारे बाएं हाथ का खेल है !

राधा—समझ गई, पर मुझे क्या मिलेगा ?

दीनानाथ—जो माँगो। हजार दो हजार·····!

राधा—(**बीच में ही**) मुझे रुपया नही चाहिए।

दीनानाथ—(**आश्चर्य से**) फिर·····?

राधा—(**निकट जाकर आर्द्र स्वर मे**) आप पुरुष है, इसलिए नारी-हृदय की पीड़ा नही समझ सकते। मै अपना खोया हुआ अधिकार चाहती हूँ। चम्पा आपके हृदय की रानी रहे, पर मुझे इन चरणो की सेवा करने दीजिए।

दीनानाथ—(**कुछ क्षण मौन रहकर**) ऐसा ही होगा। इधर काम अधिक होने के कारण मै तुम्हारी ओर ध्यान नही दे पाया। अब ऐसा नही होगा।

राधा—(**प्रसन्नता से**) सच ?

दीनानाथ—हाँ। अब तो करोगी सहायता !

राधा—अवश्य ! जाऊँ ?

दीनानाथ—अभी ठहरो। लड़के गए ?

राधा—तैयार तो हो रहे थे। शायद अब जानेवाले ही हो ! (**नेपथ्य से बैंड का स्वर आता है**) ल जिए ! वे जा रहे है। बुलाऊँ क्या ?

(**दीनानाथ सिर हिलाता है। राधा बाहर जाकर आश्रम के अनाथ**

बच्चों को बुला लाती है। वे संख्या में ६ हैं और उनकी अवस्था ८ से लेकर १२ वर्ष तक है। किसी के हाथ में ढोल, किसी के हाथ में वंशी और किसी के हाथ में झांझ है। वे चुपचाप आकर दृष्टि नीचे किए एक पंक्ति में खड़े हो जाते हैं। राधा अलग हटकर खड़ी हो जाती है।)

दीनानाथ—(**राधा से**)·····ये लोग कितना लाए थे ?

राधा—दो रुपए।

दीनानाथ—(**क्रुद्ध स्वर में**) बस! (**उठकर सबसे बड़े लड़के के गाल पर जोर से तमाचा मारता हुआ**) क्यों बे, हराम की रोटी लग गई है क्या? बाप-दादो ने सदाव्रत खोल रखा है यहाँ? (**राधा की ओर मुड़कर**) आज से जिस दिन भी ये लोग १२ रुपए से कम लाए उस दिन इनका खाना बन्द। ऐसे नही मानेंगे ये छोकरे। (**कमरे में टहलता हुआ**) जो कुछ मिलता होगा वह चाट जाते होंगे। मक्कार कही के!

(लड़के सहमे-से खड़े रहते हैं। राधा कभी लड़कों की ओर और कभी दीनानाथ की ओर देखती है।)

दीनानाथ—(**बिगड़कर**) अब खडे क्यो हो मूर्तियो की तरह? जाओ।

(लड़के द्वार की ओर बढ़ते हैं।)

दीनानाथ—ठहरो। नया गीत याद कर लिया है?

(लड़के रुक जाते हैं और सिर हिलाते हैं।)

दीनानाथ—(**कठोर स्वर में**) सुनाओ।

(लड़कों के हाथ यंत्रवत् अपने-अपने वाद्यों पर चंचल हो उठते हैं। बैंड के साथ वे गाते हैं।)

गई छोड़ बचपन में माता हमारी,
न हमने पिता का कभी प्यार पाया,

जमाने ने ठोकर कड़ी-से-कड़ी दी,
जमीं तो जमीं आसमाँ ने चिढ़ाया।

दीनानाथ—बस।

(बैंड थम जाता है। संगीत-ध्वनि रुक जाती है)

दीनानाथ—आज गगा की ओर जाना। देहातियो से अच्छे पैसे मिल जायंगे। शहरवाले तो दया-धर्म कुछ जानते ही नही। पापी कही के! जाओ।

(लड़कों का प्रस्थान। दीनानाथ शान्त होकर कुर्सी पर बैठ जाते है।)

राधा—मै अब जाऊँ?

दीनानाथ—हाँ। किन्तु सावधानी से काम करना! आजकल ये काँग्रेसिए बहुत उधम मचाए हुए है। पुलिसवाले तो जैसे उन्ही केदास है।

राधा—आप चिन्ता न करे। चुटकी बजाते रानी-महारानी की भी आँख से काजल न निकाल लाऊँ तो नाम बदल दूँ!

दीनानाथ—मुझे तुम पर विश्वास है। जाओ, और हाँ, चम्पा को कुछ भी ज्ञात न होने पाए!

(राधा मुसकराकर बाहर चली जाती है। एक क्षण पश्चात् ही राजनारायण आते है। वह सूट पहने है। दीनानाथ उन्हें बिठलाते है और जेब से सिगरेट केस निकालकर एक सिगरेट उन्हें देते है और दूसरी स्वयं जलाते है।)

दीनानाथ—बहुत दिनों मे आए!

राजनारायण—आजकल धन्धा बहुत मन्दा है यार!

दीनानाथ—विज्ञापन तो नित्य देखता हूँ समाचारपत्रों में! तुम तो तीन पैसे मे शादी कराते हो मित्र, फिर भी मन्दी·····!

राजनारायण—यही तो रोना है। विज्ञापन मे सैकडों रुपए खर्च

करता हूँ फिर भी कुछ फल नही निकलता। लोग आजकल सयाने हो गए है। दूसरे, सैकडों धोखेबाजों ने दरजनो इस तरह की संस्थाएं खोल रखी है। लोगो को ठगना ही उनका काम है। उनके कारण ईमानदारी से काम करनेवाली सस्थाएं भी नही पनप सकती।

दीनानाथ—यह तो संसार का नियम है मित्र! गेहूँ के साथ घुन तो पिसता ही है।

राजनारायण—ठीक कहते हो, दोस्त। सेवा-व्रत का मतलब है नित्य एकादशी का व्रत।

(दोनों कुछ देर तक खुलकर हंसते रहते है।)

दीनानाथ—**(कुछ संयत होकर)** आज कैसे आना हुआ?

राजनारायण—महीनो बाद आज एक मुर्गी फसी है।

दीनानाथ—**(सम्हलकर बैठते हुए)** अच्छा! कितने का ढंग है?

राजनारायण—अधिक नही, यही पन्द्रह सौ दिए है। बूढ़ा सेठ बहुत कजूस है। ७० की उम्र है। बाल-बच्चा है नही। मरते समय शादी करने का शौक चर्राया है।

दीनानाथ—**(हंसकर)** तो यह कहो कि उन्हे पत्नी नही, पुत्री चाहिए।

राजनारायण—और उसमे भी रग-रूप-उम्र की कोई शर्त नही। औरत नाम की कोई चीज मिल जाय उसी पर सतोष कर लेगे। है आश्रम मे कोई इस तरह की चीज?

दीनानाथ—एक नही, दरजनो है। किन्तु मित्र, उस मारवाड़ी सेठ की तरह कोई झझट न खड़ी कर दे! उस बार तो बाल-बाल बचे थे हम दोनो!

राजनारायण—उसमें गलती तो तुम्हारी उस छोकरी की थी, जो दूसरे दिन ही सारा माल लेकर भाग गई। बिचारा पुलिस में

रिपोर्ट न करता तो क्या करता! इस बार लडकी को समझा देना। भागने की कोशिश न करे। मजे से रहे, खाए-पिए और मौज करे।

दीनानाथ—ठीक है। लाओ निकालो मेरा भाग। अभी बुलाता हूँ लड़कियों को। किसी एक को चुनकर ले जाना।

राजनारायण—**(जेब से सौ-सौ रुपए के सात और दस-दस रुपये के पाँच नोट निकालकर उसकी ओर बढ़ाता हुआ)** यह लो साढे सात सौ। जल्दी करो। बूढे को पार्क मे छोड आया हूँ। लड़की ले जाकर उसके साथ कर दूँगा। आगे वह जाने उसका काम जाने।

दीनानाथ—**(नोट जेब में रखकर)** अभी लो। **(तीव्र स्वर में)** अरे कोई है?

(एक अधेड़ स्त्री का प्रवेश। वह सिर झुकाकर खड़ी रहती है।)

दीनानाथ—जाओ। चम्पा को छोडकर शेष सबको तुरन्त भेज दो।

(स्त्री चली जाती है।)

राजनारायण—**(हँसकर)** चम्पा को अभी तक गले मे बाधे हो दोस्त?

दीनानाथ—**(मुस्कराकर)** अभी साल दो साल और रखना है।

राजनारायण—राधा मुझे रास्ते मे मिली थी। घबराई हुई जा रही थी। क्या कही भेजा है?

दीनानाथ—हाँ। उसे भी ठिकाने लगाना है। बहुत सिर चढ़ गई है। चम्पा से तो ऐसी जलती है जैसे कच्चा चबा जायगी।

राजनारायण—**(हंसकर)** जलना ही चाहिए!

(दस-बारह स्त्रियाँ अन्दर से आकर खड़ी हो जाती हैं। अवस्था २५ से ३५ वर्ष तक है। चेहरों पर पीलापन-सा है जैसे वर्षों से रोगिणी हों। राजनारायण एक को चुन लेता है। दीनानाथ के संकेत से शेष सब फिर अन्दर चली जाती हैं।)

राजनारायण—क्या नाम है तुम्हारा?

(स्त्री उत्तर नहीं देती। सिर झुकाकर खड़ी रहती है।)

दीनानाथ--(**कठोर स्वर में**) उत्तर क्यों नही देती ? बता अपना नाम।

स्त्री--(**सहमकर**) रामकली।

राजनारायण–देखो रामकली, तुम्हे मेरे साथ चलना है। मै तुम्हे एक सेठ के साथ कर दूँगा। वह तुम्हे अपने घर ले जायगा। वहाँ तुम्हे किसी तरह की तकलीफ नही होगी। रानी की तरह राज करोगी। समझी ?

(रामकली सिर हिलाती है।)

दीनानाथ--सेठ के कोई सन्तान नही है। साल-दो-साल के बाद सब कुछ तुम्हारा ही हो जायगा। जाओ। और हाँ, जब लाखों की स्वामिनी बन जाओ, तब दस-बीस हजार इस आश्रम के लिए भी भेज देना।

(दीनानाथ और राजनारायण हँसते है। रामकली लजाकर सिर और नीचा कर लेती है। राजनारायण उठकर बाहर जाते है। पीछे-पीछे रामकली भी जाती है। अन्दर से चम्पा आती है। वह प्रसन्न मुद्रा मे है।)

चम्पा--कितने मे बेचा है रामकली को ?

दीनानाथ--यह क्या कह रही हो तुम ! बिचारे एक सेठ का घर बस गया और एक विधवा का उद्धार हो गया। हाँ, आश्रम के लिए सेठ ने ढाई सौ दिए है।

चम्पा--यही सही। लाइए, दो सौ रुपए मुझे दीजिए।

दीनानाथ--(**बेचैनी से**) तुम क्या करोगी इतने रुपयो का ? तुम्हे यहाँ क्या कमी है !

चम्पा--(**हँसकर**) मुझे अपना मूल्य चाहिए। मै आड़े समय के लिए कुछ जोड़ना चाहती हूँ। लाइए निकालिए रुपए।

(दीनानाथ विवश होकर सौ-सौ के दो नोट उसे देते हैं। वह नोटों को ब्लाउज में रख लेती है। बाहर से हरिहर आता है। उसके वस्त्र फटे और गन्दे हैं। चेहरे पर निराशा और बेबसी के चिह्न हैं। उसे देखकर चम्पा अन्दर चली जाती है।)

हरिहर—(**विनम्र स्वर में**) जी, मैनेजर साहब आप ही हैं?

दीनानाथ—(**चिढ़कर**) और नहीं तो क्या तुम हो?

हरिहर—(**हाथ जोड़कर**) मुझे आपसे ..।

दीनानाथ—(**बीच में ही**) यह भिखारियों का अड्डा नहीं है।

हरिहर—जी, मैं निर्धन और बेकार हूँ। आपकी.....।

दीनानाथ—(**बीच में ही**) वह तो तुम्हारी हुलिया ही बता रही है। यह नौकरी दिलाने का कार्यालय नहीं, विधवाश्रम और अनाथालय है।

हरिहर—जानता हूँ। आप कृपा करके मेरे बच्चे को अनाथालय में भरती कर लीजिए।

दीनानाथ—(**आश्चर्य से**) किन्तु तुम तो अभी जीवित हो! क्या ऐसा-वैसा बच्चा है?

हरिहर—जी नहीं। मैं विवाहित हूँ। मेरी पत्नी बच्चे को लिए बाहर खड़ी है। बात यह है कि मैं बहुत दिनों से बेकार हूँ। अब इन आँखों से बीबी-बच्चों को भूखा नहीं देखा जाता। आप बच्चे को अनाथालय में रख लें और पत्नी को विधवाश्रम में। बेचारों का पेट तो भरेगा!

दीनानाथ—(**व्यंग्य से**) और तुम क्या करोगे?

हरिहर—मैं चोरी करूँगा, डाके डालूँगा; यदि बचा रहा तो ठीक है, नहीं तो जेल की रोटियाँ तो हैं ही।

दीनानाथ—तुमसे सहानुभूति है मुझे ! क्या नाम है तुम्हारा ?

हरिहर—हरिहर।

दीनानाथ—देखो हरिहर ! तुम कदाचित् स्त्री के हृदय को नही जानते। क्या तुम्हारी पत्नी यह सहन करेगी कि तुम्हारे रहते वह विधवाश्रम मे रहे और तुम्हारा बच्चा अनाथ कहलाए ?

हरिहर—बेबसी सब कुछ करा लेती है। मै उसे अन्दर बुलाता हूँ। यदि आप चाहे तो उससे स्वयं पूछ ले। (**द्वार के समीप जाकर**) अन्दर आ जाओ निर्मला।

(निर्मला का प्रवेश। उसकी गोद में छोटा बच्चा है। निर्मला के वस्त्र फटे और गन्दे है। किन्तु वेश की मलिनता उसके अतुल सौन्दर्य को नहीं छिपा सकती। दीनानाथ उसे देखकर प्रसन्न हो उठते है। वह दोनों को बैठने का संकेत करते है। दोनों बैठ जाते है।)

दीनानाथ—बच्चा तो गुलाब-जैसा सुन्दर और कोमल है। (**निर्मला के मुख पर आँखे गड़ाकर**) एकदम माँ पर पडा है। लडका है या लडकी ?

हरिहर—लडका है। अब आपका ही सहारा है मैनेजर साहब !

दीनानाथ—(**गम्भीर स्वर मे**) देखो हरिहर, अपना तो ध्येय ही सेवा करना है। मै तुम्हारी सहायता करूँगा।

हरिहर—मै आपका जीवन भर आभारी रहूँगा।

दीनानाथ—मेरे मस्तिष्क मे एक योजना है। कल ही एक सेठ ने मुझसे किसी सुन्दर बच्चे को गोद लेने की इच्छा प्रकट की थी। क्यो न बच्चा उन्ही को दे दिया जाय ? बच्चे का जीवन बन जायगा और तुम्हे पैसे मिल जायँगे।

निर्मला—इससे अच्छी और क्या बात हो सकती है !

दीनानाथ—तो मै अभी फोन करता हूँ। (**फोन उठाकर एक**

नम्बर मिलाने के बाद)हलो ! सेठजी बोल रहे है क्या ? हाँ, मै दीनानाथ बोल रहा हूँ। कल आपसे जिस विषय में बात हुई थी न, वह ठीक है। आप तुरन्त आ जाइए। और हाँ, मेरी वस्तु लाना न भूलिएगा। जी हाँ ! अभी आ जाइए । (**फोन रखकर हरिहर से**) लो भाई, सेठजी आते ही होगे। बच्चे का तो प्रबन्ध हो गया। अब निर्मला के लिए···· ! (**सहसा जैसे कोई नया विचार आ गया हो**) मुझे एक उपाय सूझा है। सेठजी के पत्नी तो है नही। बच्चे के लिए उन्हे धाय की आवश्यकता तो पडेगी ही। क्यो न निर्मला को ही रखवा दूँ। भले आदमी है। किसी बात का डर भी नही है और बच्चा भी पास रहेगा।

निर्मला—(**प्रसन्नता से**) अगर ऐसा हो जाय तब तो बहुत कृपा हो।

दीनानाथ—हो क्यों नही सकता, किन्तु एक शर्त है।

निर्मला—(**घबराकर**) क्या ?

दीनानाथ—किसी को यह ज्ञान न होना चाहिए कि तुम इसकी माँ हो। (**हरिहर की ओर मुड़कर**) और तुम्हे भी दोनों को भुलाना पड़ेगा।

हरिहर—मै तैयार हूँ। दोनों के सुख की कल्पना के सहारे ही मै दिन काट लूँगा।

निर्मला—(**दृढ़ स्वर में**) मै भी तैयार हूँ।

दीनानाथ—तब ठीक है। (**जेब से दस-दस के पाँच नोट निकालकर हरिहर की ओर बढ़ाकर**) ये पचास रुपए रख लो। कल इसी समय आकर शेष रुपया ले जाना। मै सेठ से अधिक-से-अधिक ऐंठने की चेष्टा करूँगा। अब तुम जाओ।

हरिहर—(**रुपया जेब में रखकर**) बहुत-बहुत धन्यवाद !

(हरिहर उठकर प्यार भरी दृष्टि से निर्मला और बच्चे की ओर देखता है। सहसा बच्चा रोता है। हरिहर उसे चुपाने के लिए आगे बढ़ता है, फिर सहसा मुड़कर वह तीव्र गति से बाहर चला जाता है। निर्मला बच्चे को छाती से लगाकर फूट-फूट कर रोने लगती है।)

दीनानाथ--(निर्मला के समीप आकर) धैर्य से काम लो निर्मला। इस प्रकार रोने से कैसे काम चलेगा!

(दीनानाथ उसके कन्धे पर हाथ रखते हैं। निर्मला सहमकर खड़ी हो जाती है। दीनानाथ पीछे हट जाते हैं।)

दीनानाथ--(अन्दरवाले द्वार के समीप जाकर तीव्र स्वर में) चम्पा! चम्पा!!

(नेपथ्य से 'आई' का स्वर आता है और एक क्षण बाद ही चम्पा आती है। वह विचित्र दृष्टि से निर्मला की ओर देखती है।)

दीनानाथ—(हँसकर) डरो मत चम्पा। निर्मला आश्रम में नहीं रहेगी। इन्हें अन्दर ले जाओ। हाथ-मुँह धुलाकर वस्त्र बदलवा देना और कुछ जलपान की व्यवस्था कर देना (निर्मला की ओर मुड़कर) अन्दर जाओ निर्मला। जब सेठजी आ जायँगे तब मैं तुम्हें बुला लूँगा।

(चम्पा और निर्मला अन्दर जाती है। बाहर कोई कार आकर खड़ी होती है। दीनानाथ झपटकर अपने स्थान पर बैठ जाते हैं और रैक से एक रजिस्टर उठाकर उसको उलट-पुलटकर ध्यानपूर्वक देखने लगते हैं। बाहर से लक्ष्मीनारायण आते हैं। वह स्थूलकाय है। चूड़ीदार पायजामा और शेरवानी पहने हैं। हाथों में बहुमूल्य अंगूठियाँ हैं।)

दीनानाथ—आइए बैठिए सेठजी। मैं आपकी ही प्रतीक्षा कर रहा था।

लक्ष्मीनारायण—(**बैठकर**) हाँ भाई, कहाँ है वह?

दीनानाथ—(**मुँह पर अंगुली रखकर धीमे स्वर में**) अन्दर ही है। लाइए, निकालिए मेरे रुपए।

लक्ष्मीनारायण—पहले देख तो लूँ।

दीनानाथ—क्या बात करते हैं आप! क्या मेरा आपका सम्बन्ध आज का है? आप निश्चिन्त रहें। देखकर फड़क न उठे तब कहिएगा! पहले रुपए लाइए। नकद लाए हैं न? मैं चेक-वेक का चक्कर जरा कम पसन्द करता हूँ।

लक्ष्मीनारायण—पूरे गुरु-घंटाल हो भाई! पैसे के सामने किसी को कुछ नहीं समझते। (**जेब से नोटों का बंडल निकालकर मेज पर रखते हुए**) यह लें लो अपने रुपए। गिन लो, पूरे दस हजार हैं।

दीनानाथ—(**बंडल उठाकर जेब में रखता हुआ**) आपका विश्वास है सेठजी। अब हृदय को थामकर बैठिए। स्वर्ग की अप्सरा को बुलाता हूँ। अरे हाँ! मैं एक बात तो बताना भूल ही गया था। इस अप्सरा के पास फूल-सा एक बच्चा भी है।

लक्ष्मीनारायण—(**घबराकर**) इसका क्या मतलब·····! मैं तो कुमारी···· ·!

दीनानाथ—(**बीच में ही**) पूरी बात तो सुन लीजिए। बच्चा उसकी बड़ी बहन का है। वह बेचारी कुछ दिन हुए मर गई। आपको बच्चे की आवश्यकता भी है। आप बच्चे को गोद ले लें और उसको धाय की तरह रख लें। कोई अँगुली भी नहीं उठा सकेगा।

लक्ष्मीनारायण—(**कुछ क्षण सोचकर**) कहते तो ठीक हो! अच्छा बुलाओ तो जरा! मैं बेचैन हो रहा हूँ।

दीनानाथ—अभी लीजिए। (**उठकर अन्दरवाले द्वार के समीप**

जाकर) चम्पा ! निर्मला को भेज दो। सेठजी आ गए हैं। **(अपने स्थान पर बैठकर)** लड़की क्या है मानो पृथ्वी पर चाँद उतर आया है।

(गोद में बच्चे को लिए निर्मला का प्रवेश। वह स्वच्छ वस्त्र पहने है। फलस्वरूप उसका सौन्दर्य और भी निखर आया है। सेठ लक्ष्मीनारायण उसकी ओर निर्निमेष दृष्टि से देखते हैं। निर्मला कुछ क्षण तो संकुचित-सी खड़ी रहती है और फिर दीनानाथ के कहने से बैठ जाती है।)

दीनानाथ—देखो निर्मला! इन्ही सेठजी के विषय में मैंने तुम्हें बताया था। इनके यहाँ तुम्हे कोई कष्ट नही होगा। यदि ठीक से रही और इनकी आज्ञा का पालन करती रहीं तो जीवन बन जायगा। और हाँ, बच्चे का पूरा ध्यान रखना। असावधानी न होने पाए!

लक्ष्मीनारायण—**(निर्मला के समीप अपनी कुर्सी खिसकाकर)** देखूं, बच्चा तो बहुत प्यारा है!

(वह बच्चा लेने के बहाने निर्मला का अंग-स्पर्श करना चाहते हैं। निर्मला पीछे हट जाती है। सेठ लक्ष्मीनारायण हाथ खींच लेते हैं।)

दीनानाथ—**(उठकर अन्दरवाले द्वार की ओर बढ़ता हुआ)** मुझे दस मिनट के लिए क्षमा कीजिए सेठजी। आश्रमवासियों के भोजन की व्यवस्था देखकर मैं अभी आया।

(दीनानाथ चले जाते हैं। निर्मला भीत दृष्टि से द्वार की ओर देखती रहती है।)

लक्ष्मीनारायण—भगवान् भी कितना अन्यायी है! यह अनोखा रूप और यह मलिन वेश! खैर! चिन्ता न करो। दुख के दिन

गए; अब राजरानी की तरह रहोगी। **(उसका हाथ पकड़कर)** मेरे हृदय पर राज्य करोगी।

निर्मला—**(खड़ी होकर उसका हाथ झिड़कते हुए)** अपना हाथ अलग रखिए। मैं इस बच्चे की धाय हूँ, आपकी राजरानी नहीं।

लक्ष्मीनारायण—**(हँसकर)** क्या दोनों काम एक साथ नहीं हो सकते? बच्चे से अधिक मुझे तुम्हारी आवश्यकता है।

निर्मला—क्या इसीलिए मुझे नौकरी दी है आपने? दस-बीस रुपए देकर मेरा धर्म बिगाड़ना चाहते हो? यदि मैं जानती कि आप मनुष्य के वेश में पशु हैं तो कभी भी स्वीकार न करती।

लक्ष्मीनारायण—**(क्रुद्ध स्वर में)** हाँ! दूध-पीती बच्ची हो तुम! कुछ जानती थोड़े ही हो! पूरे दस हजार रुपए दिए हैं, दस हजार! क्या इतना रुपया धाय बनाने के लिए दिया है? नहीं! **(उठकर निर्मला को पकड़ने की चेष्टा करते हुए)** नहीं। अपनी प्यास बुझाने के लिए दिया है। समझी· · · · ?

निर्मला—**(पीछे हटकर बचने की चेष्टा करती हुई कठोर स्वर में)** मुझसे दूर रहिए। यदि मेरे शरीर को हाथ लगाया तो अच्छा न होगा।

लक्ष्मीनारायण—देखूँ, क्या अच्छा न होगा!

(लक्ष्मीनारायण आगे बढ़ते हैं। निर्मला डरकर पीछे हटती है। बच्चा रोता है। निर्मला चीखती है। अन्दर से घबराए हुए दीनानाथ आते हैं।)

दीनानाथ—**(लक्ष्मीनारायण को पकड़कर)** यह क्या पागलपन कर रहे हैं आप? ऐसा उ वलापन भी किस काम का!

लक्ष्मीनारायण—**(बिगड़कर)** यह छोकरी समझ रही है कि मैंने इ से धाय बनाने के लिए दस हजार रुपए दिए हैं।

दीनानाथ—बच्ची है। धीरे-धीरे सब समझ जायगी। आप इसे यहाँ से तुरन्त ले जाइए।

लक्ष्मीनारायण—(**निर्मला का हाथ पकड़कर खींचते हुए**) चलो!

निर्मला—(**हाथ छुड़ाने का असफल प्रयत्न करती हुई**) नहीं, मैं नहीं जाऊँगी। मेरा हाथ छोड दीजिए। (**दीनानाथ की ओर मुड़कर**) मुझे इस राक्षस से बचाइए। (**सिसकती हुई**) मैं आपसे विनती करती हूँ। आपके पैरों पडती हूँ।

दीनानाथ—मैं कुछ नहीं कर सकता। तुम्हें इनके साथ जाना ही पडेगा।

लक्ष्मीनारायण—(**निर्मला को द्वार की ओर घसीटते हुए**) सीधी तरह चली चलो। अब तुम मेरी हो। मैंने तुम्हें खरीद लिया है।

(**बाहर से अचानक पुलिस इन्सपेक्टर तथा कुछ सिपाहियों का प्रवेश। साथ में हरिहर भी है। दीनानाथ और लक्ष्मीनारायण घबरा जाते हैं। निर्मला अपना हाथ छुड़ाकर हरिहर के सर्प जाती है। वह प्यार से उसकी पीठ थपथपाता है।**)

इंसपेक्टर—मैं आप लोगो को कैद करता हूँ। (**सिपाहियों से**) तुम अन्दर जाकर सब लोगो को हिरासत मे ले लो।

(**सिपाही अन्दर जाते हैं। दीनानाथ और लक्ष्मीनारायण आश्चर्य से कभी इन्सपेक्टर और कभी हरिहर की ओर देखते हैं।**)

इसपेक्टर—यदि आप लोग चुपचाप चलेगे तब तो ठीक है नही तो हथकड़ियाँ पहननी पड़ेगी।

दीनानाथ—किन्तु मेरा अपराध क्या है?

इंसपेक्टर—अपराध पूछते आपको लज्जा नही आती? स्त्री-बच्चों को बेचना, अनाथ बालको से भीख मँगवाना, उनके साथ अमानुषिक व्यवहार करना क्या कम अपराध है?

दीनानाथ—(**बिगड़कर**) यह आप क्या कह रहे हैं ? मैं जनसेवक हूँ।

लक्ष्मीनारायण—मैं सेठ लक्ष्मीनारायण हूँ। आप मेरा अपमान कर रहे हैं। मैं आप पर मान-हानि का केस चलाऊँगा।

इंसपेक्टर—(**हँसकर**) चिन्ता नही। आप लोगो के विरुद्ध मेरे पास यथेष्ट प्रमाण हैं।

दीनानाथ—(**व्यग्रता से**) क्या प्रमाण है आपके पास ? यदि आप इस बेकार और आवारा युवक के कहने से यह सब कर रहे हैं तो मैं आपको बताए देता हूँ कि······।

इंसपेक्टर—(**बीच में**) नही श्रीमानजी ! जिस राधा को आपने गंगा-घाट पर भेजा था वह वहाँ न जाकर कोतवाली गई थी। उससे हमे सब ज्ञात हो गया है।

निर्मला—इस धूर्त्त ने मुझे इस पापी के हाथ दस हजार रुपए में बेचा था। नोट इसकी जेब मे हैं।

(इन्सपेक्टर दीनानाथ की जेब से नोटों का बंडल निकाल लेता है।)

लक्ष्मीनारायण—यह लडकी झठी है। यह रुपया तो मैंने आश्रम को दान-स्वरूप दिया है। है न दीनानाथजी ?

दीनानाथ—और क्या ! आपने हमें समझ क्या लिया है ! इस छोकरी और उस कुलटा राधा के कहने से आप हम सम्भ्रान्त नागरिकों का अपमान कर रहे हैं। राधा को मैंने आश्रम से निकाल दिया था। शायद इसीलिए उसने बदले की भावना से यह झूठी बात कही है ।

इंसपेक्टर—(**हँसकर**) और रामकली ?

दीनानाथ—(**घबराकर**) रामकली? कौन रामकली? मैं किसी रामकली को नहीं जानता।

इंसपेक्टर—अच्छा। बहुत शीघ्र भूल गए? राजनारायण के द्वारा उसे पन्द्रह सौ में किसने बेचा? झूठ बोलने से काम नहीं चलेगा। आपका स्वागत करने के लिए राजनारायण और रामकली पहले से ही कोतवाली में उपस्थित है।

दीनानाथ—(**घबराकर**) जी?

इंसपेक्टर—(**हँसकर**) जी हाँ! जिस बूढ़े सेठ को आप लोगो ने मूर्ख बनाना चाहा था वह हमारा ही आदमी था। समझे?

(दीनानाथ दोनों हाथों से सिर थामकर कुर्सी पर अप्रतिभ होकर बैठ जाते हैं। लक्ष्मीनारायण अपनी जिह्वा से शुष्क अधरों को तर करने का प्रयास करते हैं।)

लक्ष्मीनारायण—(**हाथ जोड़कर रुँआसे स्वर में**) मुझ पर दया कीजिए इसपेक्टर साहब। मैं मर जाऊँगा। मेरा मुह काला हो जायगा। मुझे छोड़ दीजिए। दस, बीस, चालिस हजार, चाहे जितना ले लीजिए।

इंसपेक्टर—अब भारत स्वतन्त्र है सेठजी। चाँदी के टुकड़ों पर आप हमारी ईमानदारी नहीं खरीद सकते। अपने कुकर्मों का फल आपको भोगना ही पडेगा। चलिए मेरे साथ।

दीनानाथ—(**उठकर**) चलिए। मैं तो जनसेवक हूँ। यहाँ भी सेवा करता रहा हूँ, वहाँ भी करूँगा।

निर्मला—(**क्रुद्ध स्वर में**) पैसे के लिए भोले बच्चों का जीवन नष्ट करना, लड़कियो को बेचना, उनसे शरीर का व्यवसाय कराना क्या जनसेवा है? सेवा के पवित्र नाम पर कलंक लगानेवाले पिशाचों को जो दंड दिया जाय थोड़ा है।

(दीनानाथ और लक्ष्मीनारायण उसे घूर-घूर कर देखते हैं। हरिहर उसे शान्त करता है।)

दीनानाथ—(**हरिहर और निर्मला की ओर देखकर व्यंग से**) जनसेवक से मैं राजसेवक बन गया। मुझे दुःख है कि मैं आप लोगों की सेवा न कर सका।

इंसपेक्टर—उसकी अब कोई आवश्यकता नहीं है। वह तो केवल अभिनयमात्र था। (**हरिहर की ओर मुड़कर**) इन्हें अपना परिचय तो दे दीजिए।

हरिहर—(हँसकर) जैसी इच्छा! गुप्तचर-विभाग की एक विशेष शाखा का सदस्य होने के नाते मैं भी जनसेवक ही हूँ। यह मेरी पत्नी है, बच्चा भी मेरा ही है।

(दीनानाथ और लक्ष्मीनारायण आश्चर्य से उनकी ओर देखते रहते हैं। इंसपेक्टर हंसता है। निर्मला और हरिहर के अधरों पर भी मुसकान है। धीरे-धीरे यवनिका गिरती है।)

रत्ना की आग

पात्र—रत्ना—तुलसीदास की पत्नी।

लाली—रत्ना की छोटी बहन।

तुलसीदास—रत्ना के पति।

स्थान—रत्ना की माँ के घर का एक कमरा।

समय—रात का दूसरा प्रहर।

(कमरा साधारण है। सामने की दीवार से कुछ हटकर एक पलंग पड़ा है। बाईं ओर एक द्वार है जो दूसरे कमरे में खुलता है। दाहिनी ओर एक खिड़की है जो खुली है। एक कोने में छोटा-सा दीप जल रहा है। कमरे मे धीमा प्रकाश है। बाहर भयंकर वर्षा हो रही है। रह-रहकर बिजली कड़कती है। तेज हवा के झोंके कभी-कभी खिड़की को खड़खड़ा जाते है और दीप की लौ को कम्पित कर जाते है। पलंग पर रत्ना लेटी है। वह जाग रही है तथा क्षण-क्षण में करवट बदलती है। सहसा जोर से बिजली कड़कती है। उसकी चमक से कमरा क्षण भर के लिए जगमगा उठता है। रत्ना उठकर बैठ जाती है। कुछ देर बाद वह उठकर खिड़की तक जाती है और उसे बन्द करने के लिए हाथ बढ़ाती है, किन्तु फिर न जाने क्या सोचकर लौट आती है और पलंग पर बैठकर बाहर की ओर निर्निमेष दृष्टि से देखती रहती है। द्वार से लाली आती है।)

लाली—(आश्चर्य से) अभी तक सोई नही जीजी?

रत्ना—(चौंककर) कौन, लाली? क्या करूँ, नींद ही नही आती! क्या तू भी जाग रही थी?

लाली—(हँसकर) मैं तो अभी जागी हूँ बिजली की कडक सुनकर। खिडकी बन्द करने चली आई। (खिड़की की ओर बढ़ते हुए) ओह! कैसी ठंडी हवा चल रही है! हड्डी-हड्डी काँप रही है।

रत्ना—खिडकी खुली रहने दे लाली।

लाली—क्यो, क्या बीमार पड़ने की इच्छा है?

रत्ना— (रूखी हँसी हँसकर) शीतल पवन के मादक झकोरो से भी कभी कोई बीमार पडता है पगली! आ, इधर बैठ मेरे पास।

लाली—(खिड़की बन्द करने का उपक्रम करती हुई) इन्हें तुम

शीतल पवन के झकोरे कहती हो जीजी! आज तो जैसे लंका के उच्चासों पवन मिलकर एक साथ आक्रमण कर बैठे हैं।

रत्ना—(**कठोर स्वर में**) यदि तूने खिडकी बन्द की तो मेरा दम घुट जायगा लाली। मेरा रोम-रोम जल रहा है।

लाली—(**मुड़कर उसकी ओर बढ़ती हुई आश्चर्य से**) क्या कह रही हो जीजी?

रत्ना—ठीक कह रही हूँ। आ, इधर आकर बैठ जा।

लाली—(**उसके समीप बैठकर रत्ना की नाड़ी देखती हुई**) देखूं तुम्हे ज्वर तो नही है जीजी!

रत्ना—(**हँसकर हाथ छुड़ाती हुई**) पगली! जिस ताप से मै दग्ध हो रही हूँ, उसे तू नाडी से नही जान सकती। मेरे हृदय पर हाथ रखकर देख, जो प्रायश्चित की अग्नि मे जला जा रहा है।

लाली—कैसा प्रायश्चित जीजी?

रत्ना—लाली! अनजान मे ही मै एक भयकर पाप कर बैठी हूँ। मेरा वह पाप मुझे सैकडो बिच्छुओ की तरह यत्रणा पहुँचा रहा है। नरक की यातना भी इस दारुण व्यथा की तुलना मे कुछ न होगी।

लाली—मेरी समझ मे कुछ नही आया। तुम कोई पाप कर सकोगी, यह मै स्वप्न में भी नही सोच सकती।

रत्ना—क्या मैने यहाँ आकर पाप नहीं किया है?

लाली—क्या माँ के घर आना पाप है?

रत्ना—पर क्या पति की अनुपस्थिति में बिना उसकी अनुमति के इस प्रकार घर सूना छोडकर चली आना उचित है?

(**लाली कोई उत्तर नहीं देती। वह खिड़की की ओर देखने लगती है।**)

रत्ना—तू भी तो माँ के घर आई है। पर क्या तू भी पति से

बिना आज्ञा लिए उनकी अनुपस्थिति मे घर अकेला छोड़कर चली आई है? उत्तर क्यों नही देती?

लाली—(**धीमे स्वर में**) नही जीजी। मै उनकी अनुमति से आई हूँ।

रत्ना—तब तू मेरी ज्वाला को क्या समझेगी! मैंने यहाँ आकर बड़ा भारी पाप किया है लाली! जब वे घर आए होगे तो मुझे न पाकर क्या सोचा होगा उन्होने! क्या दशा हुई होगी उनकी! कैसे खाई होगी उनने बासी रोटियाँ! कैसे आई होगी उन्हे नीद!

(**रत्ना का कंठ भर आता है और वह सिसकने लगती है। लाली उसे धीरज बँधाने की चेष्टा करती है।**)

लाली—जीजी! तुम्हारी भावुकता अभी तक नही गई। पुरुष इतने कोमल नही होते जितना····!

रत्ना—(**बीच मे ही**) तूने कदाचित् पुरुष का बाह्य रूप ही देखा है, उसकी अन्तरात्मा नही देखी। वह बाहर से जितना कठोर होता है, अन्दर से उतना ही कोमल! और फिर वे·· वे तो देवता है! लाली, देवता! मुझे प्राणो से भी अधिक चाहते है! एक पल का वियोग भी वे नही सह सकते। मै जानती हूँ·····मै जानती हूँ लाली :···· कि वे मेरी स्मृति मे करवटे बदल रहे होगे, उन्होने भोजन भी न किया होगा, दीप भी न जलाया होगा। अन्धकार, गहन अन्धकार मे पड़े वे सिसक रहे होगे। उनकी सिसकियाँ मुझे सुनाई पड़ रही है लाली।

(**रत्ना फूट-फूट कर रोने लगती है।**)

लाली—(**धीमे स्वर में**) यह क्या कर रही हो जीजी! उधर माँ सो रही है। जाग गई तो क्या कहेगी! शाम को तुमने 'भूख नहीं है' कहकर भोजन नहीं किया और अब यदि माँ को सच्ची बात मालूम हो गई तो क्या सोचेंगी! रोना बन्द करो जीजी।

रत्ना—(**संयत होकर**) मैं जानती हूँ वे क्या कहेंगी। यही न, कि विवाह के बाद बेटी पर क्या माँ का कोई अधिकार नहीं रहता। उन्ही के शब्दों मे उत्तर भी दे दूंगी उन्हें। बिदा के समय उन्होंने तो कहा था—'बेटी, आज से पति का घर ही तेरा घर है।' याद तो होगा तुझे लाली? तुझसे भी तो यही कहा था?

लाली—सब कुछ याद है जीजी, पर अब रोने से क्या लाभ! जो हो गया सो हो गया। उन्हें पता तो लग ही गया होगा कि तुम यहाँ आ गई हो।

रत्ना—कह तो आई थी पडोसिन से, पर उसने बताया भी होगा या नही!

लाली—बताया क्यो नही होगा! तुम तो व्यर्थ ही शकाये करती हो। अब सो जाओ जीजी।

रत्ना—नीद जैसे रूठ गई है मुझसे। अच्छा लाली यदि मै कचन भैया के विवाह मे न जाऊँ तो मामाजी बुरा तो न मानेगे?

लाली—मानेगे क्यो नही! पर तुम यह पूछ क्यों रही हो? कल प्रातःकाल ही तो हम लोग मामाजी के यहाँ चल रही हैं।

रत्ना—तू चली जाना। मै न जाऊँगी।

लाली—(**आश्चर्य से**) जिस लिए आई हो वही नही करोगी, यहाँ अकेले रहकर क्या करोगी? माँ भी तो चलेगी।

रत्ना—सूर्योदय होते ही मै राजपुर जाऊँगी। उनका वियोग मेरे लिए असह्य है।

लाली—(**हँसकर**) ऐसी बात है! जीजी, अभी तो प्रभात दूर है, मेरा कहना मानो तो अभी चली जाओ। जगाऊँ माँ को?

रत्ना—मै सच कह रही हूँ और तू परिहास कर रही है। सिर की सौगन्ध यदि तूने फिर हँसी की तो मै रोने लगूँगी।

लाली—ा, जीजी ना। रोना मत। अब जो हँसू तो जो चाहो दंड देना। तुम्हे राजपुर जाना ही है तो कोई क्यो रोकेगा! पर अभी तो रात है, रात भगवान् ने सोने के लिए बनाई है। अब सो जाओ जीजी।

रत्ना—मुझे माँ से कहने मे लज्जा आएगी लाली तू कह देगी?

लाली—कह दूँगी।

रत्ना—वचन दे।

लाली—कह तो रही हूँ कि कह दूँगी, कह दूँगी, कह दूँगी। बस, अब तो विश्वास आया। सो जाओ अब।

रत्ना—देख, वचन भूल न जाना।

लाली—नही भूलूँगी, नही भूलूँगी, नही भूलूँगी। सवेरा होते ही मै सब ठीक कर दूँगी।

रत्ना—और मामाजी को भी मना लेगी?

लाली—मै मामीजी से कह दूँगी। वे मामाजी को समझा देगी। तुम चिन्ता न करो जीजी।

(लाली उठकर द्वार की ओर बढ़ती है।)

रत्ना—**(उठकर)** लाली, यदि तूने अपना वचन पूरा नही किया तो मै कुछ खा लूँगी।

लाली—**(मुड़कर उसके दोनों हाथ अपने हाथ में लेते हुए अवरुद्ध कंठ से)** कैसी बाते करती हो जीजी! तुम्हे मेरी जान की सौगन्ध यदि फिर कभी ऐसी बाते की। मुझ पर, अपनी लाली पर, विश्वास रखो जीजी!

रत्ना—**(लाली को हृदय से लगाते हुए)** मेरी अच्छी लाली! अब मेरा हृदय हलका हुआ। जा, सो जा। मै भी सोने की चेष्टा करूँगी।

(लाली का प्रस्थान। रत्ना पलग पर लेट जाती है। उसका मुख दीवार की ओर है। बाहर अब भी

हवा और तूफान है। खिड़की के मार्ग से तुलसीदास का प्रवेश। उनके वस्त्र भीगे हैं और वे शीत से काँप रहे हैं। केश मस्तक पर बिखरे हैं। वे सतर्क दृष्टि से चारों ओर देखकर रत्ना के पलंग की ओर मन्द गति से बढ़ते हैं।)

तुलसी—(**समीप पहुँचकर अत्यन्त धीमे स्वर में**) रत्ना! रत्ना!!

रत्ना—(**चौंककर उठते हुए**) कौन है? चो·····र·····!

तुलसी—(**अपने हाथ से उसका मुँह बन्द करके**) मैं हूँ ····· तुलसी। रत्ना ··· मेरी रत्ना! देखो, मैं हूँ तुलसी।

(रत्ना उन्हें पहिचान लेती है। तुलसी मुँह से हाथ हटा लेते हैं।)

रत्ना—(**खड़ी होकर आश्चर्य से**) आप····· ? इस समय ·····? यहाँ·····?

तुलसी—हाँ प्रिये! तुम्हारा वियोग मैं सह न सका। तुम मुझे अकेला छोड़कर क्यों चली आई? तुमने यह न सोचा कि विरह केवल स्त्री को ही नहीं, पुरुष को भी जला सकती है।

रत्ना—(**पलंग से चादर उठाकर देती हुई**) आपके वस्त्र भीग गए हैं। उन्हें उतारकर यह चादर लपेट लीजिए।

(तुलसीदास चादर लेकर फिर पलंग पर रख देते हैं। फिर एक कोने में जाकर अपने वस्त्र निचोड़ते हैं।)

तुलसी—(**समीप आकर**) तुम्हारे सामीप्य का सुख पाकर मैं सब दुःख भूल गया हूँ रत्ना। अब न तो चादर की आवश्यकता है और न आग की। (**पलंग पर बैठकर**) आओ, मेरे समीप बैठकर वचन दो, फिर कभी मुझे छोड़कर कहीं नहीं जाओगी।

रत्ना—(**समीप जाकर**) मेरे चले आने से आपको कष्ट आ?

तुलसी—(**हँसकर**) कष्ट! निष्प्राण देह को सांसारिक कष्टों का अनुभव नही होता। मुझे लगा जैसे मेरी चेतना, मेरी प्रेरणा, मेरी शक्ति मुझसे छिन गई है। पैर स्वय ही इस ओर उठ गए और ··!

रत्ना—(**बीच में ही**) और आपने इस भयानक वर्षा और प्रबल प्रभंजन की भी चिन्ता न की?

तुलसी—मेरी आँखों की बरसात और हृदय के प्रभंजन की तुलना मे इनका अस्तित्व ही क्या है! मुझे तो जल की बूँदे नई स्फूर्ति दे रही थी, पवन के झकोरे नई प्रेरणा दे रहे थे, मेघो की गर्जना हृदय मे नूतन उत्साह भर रही थी और विद्युत् की चमक मेरा पथ प्रकाशित कर रही थी।

रत्ना—(**तुलसी के चरण पकड़कर भूमि पर बैठते हुए**) आपको पाकर मै धन्य हुई नाथ! पर···· पर एक साधारण स्त्री के लिए इतना कष्ट उठाना, प्राणो तक को संकट मे डालना, कहाँ तक उचित है!

तुलसी—(**रत्ना को उठाकर समीप बैठाते हुए**) तुम मेरी जीवन-शक्ति हो रत्ना। तुम्हे साधारण स्त्री कहना मूर्खता है। जीवन की खोज मे यदि जीवन भी चला जाय तो इसमे दुःख कैसा! यही तो जीवन की सार्थकता है।

रत्ना—जीवन एक अमूल्य रत्न है नाथ! वह किसी की थाती है। उससे इस प्रकार खिलवाड़ करना ठीक नही। आपने यहाँ आकर अच्छा नहीं किया।

तुलसी—क्या मेरे आने से तुम्हे प्रसन्नता नही हुई?

रत्ना—अपने आराध्य को पाकर कौन प्रसन्न नही होगा! किन्तु हम सामाजिक प्राणी है और समाज में रहकर हमें समाज के नियमों को मानना ही पड़ेगा।

तुलसी—पति-पत्नी का मिलन पाप नहीं है। यहाँ आकर न तो

मैंने किसी सामाजिक मर्यादा का उल्लंघन किया है और न कोई अपराध ही किया है।

रत्ना--पुरुष होने के नाते आप मेरी बात नहीं समझ रहे हैं। लोक-लाज का ध्यान नारी को रखना ही होता है। यदि अभी माँ यहाँ आ जायँ तो क्या हो! समाज आपकी हँसी उडाएगा।

तुलसी--(**दृढ़ स्वर में**) मुझे समाज की चिन्ता नहीं। मैं तुम्हे चाहता हूँ। मेरा समाज--मेरा ससार, तुम ही तक है। मेरे लिए विश्व मे सब कुछ जड है। केवल हम चेतन है--मैं और तुम।

रत्ना--आपका प्रगाढ प्रेम देखकर मुझे अपने भाग्य से ईर्ष्या हो रही है। आप महान् है। मैं आपके चरणो की धूल होने योग्य भी नही हूँ।

तुलसी--(**भावावेश में**) तुम तो मेरी हृदयेश्वरी हो, मेरे जीवन का शृगार हो रत्ना। तुम्हे पाकर मैं कृतार्थ हो उठा हूँ!

रत्ना--आप मुझे लज्जित कर रहे है। मुझमें ऐसा क्या है जिसके प्रति आपके हृदय मे इतना स्थान है!

तुलसी--क्यों? यह श्याम घन को लज्जित करनेवाले काले कुंचित कमनीय केश, चाँद को अपनी छवि का शताँश देनेवाला यह गोरा मुख, खंजन को चंचलता और मृगी को भोलापन देनेवाले ये कजरारे नेत्र, कमल·····!

रत्ना--(**पलग से उठकर बीच ही मे**) बस, बस, समझ गई। आपको मुझसे नही मेरे रूप से, मेरे शरीर से प्रेम है। इस क्षणिक नश्वर सौन्दर्य के प्रति आपका यह मोह देखकर मुझे दुख हुआ।

तुलसी--(**उठकर रत्ना के समीप जाते हुए**) आज की रात दुख के लिए नही है। रूठना और मनाना तो फिर भी हो सकता है। प्रभात निकट है। दो घड़ी प्यार की बाते करो, मुझे अपने आलिगन में कसकर अपने अधरों की सुधा पिलाओ। प्यासे प्राण कब से तरस रहे है!

(तुलसी उसे आलिंगन में बाँधना चाहते हैं। वह पीछे हट जाती है। उसके मुख पर विरक्ति के भाव उदित होते हैं।)

रत्ना—क्या आपका प्यार यहीं तक सीमित है?

तुलसी—**(कातर स्वर मे)** व्यर्थ क्यों मान कर रही हो। मेरे पास अधिक समय नही है। कहाँ तो मेरी प्रतीक्षा मे जाग रही थी और कहाँ अब मनुहार करवा रही हो।

रत्ना—यह आपसे किसने कहा कि मैं आपकी प्रतीक्षा मे जाग रही थी? मुझे स्वप्न मे भी अनुमान न था कि आप यहाँ आयेंगे।

तुलसी—**(कठोर स्वर में)** तो फिर खिडकी से जो रस्सी लटकाई गई थी वह क्या किसी और के लिए थी?

रत्ना—**(आश्चर्य से)** रस्सी? कैसी रस्सी?

(रत्ना खिड़की के पास जाकर ध्यान से देखती है। सहसा वह दो पग पीछे हट आती है और उसके मुख से हलकी-सी चीख निकल जाती है। तुलसीदास उसके पास जाते हैं।)

रत्ना—**(कम्पित स्वर मे)** देखा आपने? जिसे आप रस्सी समझ रहे थे वह काली नागिन थी। देखिए, वह नीचे चली गई।

तुलसी—**(भयमिश्रित आश्चर्य से)** नागिन ····! पर·····पर···। मैं···। मैं तो रस्सी हीं समझ रहा था। **(पलग पर बैठकर)** मेरा हृदय धड़क रहा है। मुझे तुम्हारे प्यार ने अन्धा कर दिया था रत्ना! कुशल हुई। जगदीश्वर ने रक्षा की अन्यथा यदि कही नागिन·····!

रत्ना—**(बीच में ही)** प्यार और आसक्ति मे अन्तर है। आप प्यार को क्यो कलकित करते है। वह तो अन्धो की आँख है। आपको अन्धा प्यार ने नही, आसक्ति ने किया था—मेरे यौवन, शरीर और सौन्दर्य के मोह ने किया था।

तुलसी—ऐसे शब्द मुह से न निकालो रत्ना।

रत्ना—सत्य सदैव कटु होता है। आप शरीरों के मिलन को ही सच्चा मिलन समझते है, इन्द्रियो का सुख ही आपके लिए सच्चा आनन्द है ?

तुलसी—(**खड़े होकर**) रत्ना !

रत्ना—(**उसी स्वर में**) आपके लिए हृदयों का मिलन कोई अर्थ नही रखता, आत्माओ का पवित्र सगम कोई महत्त्व नही रखता।

तुलसी—(**आगे बढ़कर**) मेरे व्यथित हृदय को ये शब्द-शर नही, प्यार के दो बोल चाहिए; मुझ असहाय को तुम्हारी कोमल भुजाओं का सहारा चाहिए।

रत्ना—ऐसी बाते करके आप मुझे तो लज्जित कर ही रहे है, पर अपने अज्ञान का भी ढिंढोरा पीट रहे है। यदि आपको आश्रय ही चाहिए तो उससे माँगिए जो सारे विश्व का पालक है; शरण में उसकी जाइए जिसने आज आपकी जीवन-रक्षा की है। मै तो स्वयं दुर्बलताओं की पिंड हूँ। जिसे आप सौन्दर्य की साकार प्रतिमा समझते है वह बहुत कुरूप है—बहुत कुरूप ! उसका सच्चा रूप देखकर आप ग्लानि और घृणा से मुह फेर लेगे।

तुलसी—ऐसा न कहो रत्ना !

रत्ना—पै ठीक कह रही हूँ। मुझमे हड्डी, माँस, रक्त, मज्जा आदि के अतिरिक्त और क्या है ! आपकी आसक्ति और अटूट लगन के योग्य मै नही हूँ। जिसे जल की शीतल धारा समझकर आप अपनी प्यास बुझाना चाहते है, वह केवल मृग-मरीचिका है। इस गोरी चमड़ी के नीचे हड्डियों का ढाँचामात्र है। उससे इतना मोह क्यों, उस पर यह आसक्ति क्यों ?

तुलसी—(**आर्द्र स्वर में**) बस करो रत्ना, बस करो मझे

तुम्हारा वास्तविक रूप दिखाई देने लगा है। ओह! कितना वीभत्स दृश्य है!

(तुलसी आँखें बन्द कर लेते हैं।)

रत्ना—(गद्‌गद् स्वर में) मैं धन्य हुई। सच्ची लगन वह है, जो राम के चरणों में हो; सच्ची आसक्ति वह है, जो उनकी छवि के प्रति हो। वही सच्चा आनन्द है, वही सच्ची तृप्ति है।

तुलसी—(आँखें खोलकर) तुम ठीक कहती हो। मैं अन्धा था, तुमने मुझे आँखें दीं, अज्ञान के अन्धकार से निकालकर ज्ञान के धवल प्रकाश में खड़ा कर दिया। मैं तुम्हारा कृतज्ञ हूँ।

रत्ना—मुझे लज्जित न करें नाथ।

तुलसी—नाथ? नहीं। तुम मेरी गुरु हो, मैं अबोध शिष्य हूँ। अज्ञान में जाने क्या-क्या अपराध किए हैं। क्षमा चाहता हूँ। देवि! आज मैं तुम्हारे रूप में जगत्-जननी माँ के दर्शन कर रहा हूँ। इस अबोध शिशु का प्रणाम स्वीकार हो।

(तुलसी सिर झुकाकर खिड़की की ओर बढ़ते हैं। रत्ना व्याकुल हो उठती है।)

रत्ना—(आकुल स्वर में) ठहरिए सूर्योदय के बाद जाइएगा।

तुलसी—अब रुकना असम्भव है। देवि! दूर—बहुत दूर से मुझे कोई बुला रहा है। मैं जाता हूँ।

(तुलसी खिड़की के मार्ग से ही बाहर चले जाते हैं।)

रत्ना—(उसी ओर देखकर) गए! मेरे प्राणेश्वर रूठकर चले गए!

(वह सिसकने लगती है और पलंग पर गिरकर फूट-फूट कर रोने लगती है। हवा का एक झोंका दीप बुझा देता है। धीरे-धीरे यवनिका गिरती है।)

———

मंगल, मानव और मशीन

पात्र—मेधावी—मगल-लोक का एक वैज्ञानिक ।
मारुत—मेधावी का सहकारी
भारतीय वैज्ञानिक ।
अंग्रेज वैज्ञानिक ।
अमेरिकी वैज्ञानिक ।
रूसी वैज्ञानिक ।

स्थान—मंगल लोक के उत्तरी भाग का एक निर्जन स्थान ।
समय—२३ जून, १९६८ की रात ।

(स्थान खुला हुआ है। इधर-उधर अनेक प्रकार के यंत्र लगे हैं, जिनमें मुख्य 'दूरदर्शीयंत्र', 'ध्वनियंत्र', 'आकर्षण-किरणयंत्र' तथा 'भाषायंत्र' हैं। एक स्टूल पर छोटी-सी सुन्दर किन्तु दृढ़ पेटी है, जो बन्द है। मेधावी 'दूरदर्शीयंत्र' के समीप एक कुर्सी पर बैठा है। वह हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति है। वस्त्र बहुत पतले हैं, किन्तु वे पारदर्शी नहीं हैं। हाथों में दस्ताने हैं। अतः दर्शकों को केवल उसका मुख ही दिखाई पड़ रहा है। मुख कुछ-कुछ मनुष्यों-सा होकर भिन्नता लिए है। मारुत 'ध्वनि-यंत्र' के समीप बैठा है। उसकी वेश-भूषा भी वैसी ही है। दो-चार रिक्त स्टूल और कुर्सियाँ इधर-उधर रखी हैं। एक ओर से हरा और दूसरी ओर से लाल प्रकाश आ रहा है। दोनों का सम्मिलित प्रभाव कुछ विचित्र-सा वातावरण बना रहा है। मेधावी और मारुत के मुख (जो दर्शकों के सामने हैं) इस प्रकाश के प्रभाव से कुछ लाल और कुछ हरे से दिखाई पड़ रहे हैं।)

मारुत—आज मैं भी भूलोक को निकट से देख सकूँगा गुरुदेव?

मेधावी—आज हम हिन्दी भाषा का ही प्रयोग करेंगे। भाषा-यंत्र को हिन्दी पर लगा दो।

(मारुत उठकर यंत्र का स्विच दबाता है और पुनः अपने स्थान पर आ जाता है।)

मेधावी—भूलोक देखने की इच्छा क्या तुम्हारे हृदय में भी है?

मारुत—हाँ गुरुदेव। आप तो कई बार वहाँ की सैर कर आए हैं। कुछ आप ही बताइए वहाँ के निवासियों के विषय में।

मेधावी—वहाँ मानव नाम का एक जीव रहता है, जिसकी महत्वाकांक्षा का कोई अन्त ही नहीं है। वह चन्द्र-लोक के साथ-साथ हमारे पवित्र लोक पर भी अधिकार करने की सोच रहा है।

मारुत—(**आश्चर्य से**) अच्छा, तब तो मानव नाम का यह पशु अवश्य ही बहुत शक्तिशाली होगा!

मेधावी—वह स्वय अपनी शक्ति का नाश कर रहा है मरुत! उसका मस्तिष्क विकृत है।

मारुत—क्यो?

मेधावी—जो अपने ही बन्धु-बान्धवो के रक्त का प्यासा हो, वह पागल नही तो और क्या है! भूलोक मे कोई सौन्दर्य नही है, वह बहुत कुरूप है।

मारुत—कुरूप ····?

मेधावी—हाँ, टूटा-फूटा, कटा! जाति, धर्म, भाषा और राष्ट्र की छुरियो ने उसके खंड-खंड कर दिए है।

मारुत—तब तो व्यर्थ है मेरी जिज्ञासा। आप ही देखे उसे! मै चित्रो से ही अपना काम चला लूँगा। अच्छा गुरुवर, आज भूलोक-वासी भी हमारे लोक को देखने के लिए बडे-बडे आयोजन कर रहे होगे।

मेधावी—क्यों नही, सामीप्य का लाभ सभी उठाते है। पर उनके यंत्रों में इतनी शक्ति नही, जैसी हमारे यत्रों मे है। हम आज उनका घर-द्वार तक देख सकते है और वे केवल हमारी दुनिया को ही देख सकते है।

(सहसा 'ध्वनियंत्र' से घरघराहट की आवाज आती है, जो निरन्तर तीव्र होती जाती है। दोनों चौंक पड़ते है। मारुत भागकर 'ध्वनियंत्र' के समीप जाता है। मेधावी अपने यंत्र मे आँख लगाकर ध्यान से देखता है।)

मारुत—(**चीखकर आवेशयुक्त स्वर में**) पृथ्वी की ओर से कोई वस्तु विद्युत्-वेग से इस ओर आ रही है। यह आवाज उसी की है गुरुदेव।

मेधावी—(**यंत्र से आँखें हटाकर**) हाँ। कोई रॉकेट है, पर वह

यहाँ तक कभी न पहुँच सकेगा ! मानव का यह प्रयास असफल रहेगा। (हंसकर) पृथ्वी का कीड़ा·····हा·····हा·····हा !

मारुत—(निकट आकर) क्यों न हम अपनी आकर्षण-किरणों से उस राकेट को खींच लें ! मैं भी मानव नामधारी उस जीव को देख लूं।

मेधावी—जैसी तुम्हारी इच्छा।

(मेधावी उठकर 'आकर्षण-किरणयंत्र' के समीप जाता है और एक बटन दबा देता है। सहसा एक बिजली-सी कौंध जाती है। स्विच बन्द करके वह फिर अपने स्थान पर आ जाता है।)

मेधावी—देख लो तुम भी इस पागल पशु को !

('ध्वनियंत्र' की आवाज बहुत तीव्र हो जाती है और फिर चरम उत्कर्ष पर पहुँचकर सहसा रुक जाती है। उसकी प्रतिध्वनि गूंजती रहती है।)

मारुत—रॉकेट आ गया ?

मेधावी—हाँ, कुछ दूर पर ही उतरा है। सावधान, मानव नाम का प्राणी आता ही होगा।

(दोनों अपने-अपने स्थानों पर संभलकर खड़े हो जाते हैं। एक क्षण बाद ही चार मनुष्य आते हैं। तीन सूट पहने हैं और एक सफेद चूड़ीदार पैजामा तथा काली शेरवानी। चारों आक्सीजन के यंत्र से लैस हैं, अतः दर्शकों को उनका रूप-रंग ठीक से नहीं दिखाई पड़ता। मारुत विस्मय और आश्चर्य से उनकी ओर देखता है।)

मेधावी—आप लोग इन्हें उतार क्यों नहीं देते ?

(सब लोग आश्चर्य से उसकी ओर देखते हैं।)

मेधावी—ओह, आप कदाचित् इस पर आश्चर्य कर रहे हैं कि मैं हिन्दी कैसे सीख गया। हम अखिल ब्रह्माण्ड की समस्त भाषाएं जानते

है। (**'भाषा-यंत्र' की ओर संकेत करके**) भाषा-सम्बन्धी हमारी सभी कठिनाइयो को यह यंत्र दूर कर देता है।

(**सब बहुत ध्यान से यत्र को देखते हैं।**)

मारुत—उतार भी दीजिए ये यत्र! मै आप लोगों को ठीक से देखना चाहता हूँ।

एक व्यक्ति—(**धुटी आवाज मे**) यह सम्भव नही। ऑक्सीजन..।

मेधावी—ओह, समझा! बिना ऑक्सीजन के आप लोग रह नहीं सकते। यहाँ ऑक्सीजन का अभाव है। (**वस्त्रों के चार छोटी-छोटी गोलियाँ निकालकर प्रत्येक को देकर**) खा लीजिए इन्हे और फिर उतार दीजिए आक्सीजन के यंत्र! कोई कठिनाई नही होगी आपको।

(**चारों व्यक्ति मुँह खोलकर गोली खा लेते हैं और फिर डरते-डरते यंत्र उतारते हैं। जब उन्हें बिना यंत्र के कोई कठिनाई नहीं होती, तो वे प्रसन्न होते हैं।**)

मेधावी—अब अपना परिचय दीजिए।

पहला—मै भारतीय वैज्ञानिक हूँ।

दूसरा—मै अमेरिकी वैज्ञानिक हूँ।

तीसरा—मै रूसी वैज्ञानिक हूँ।

चौथा—मै अग्रेज वैज्ञानिक हूँ।

मेधावी—(**प्रसन्नता से**) वैज्ञानिक मै भी हूँ, पर आपका विज्ञान हमारे विज्ञान की तुलना मे घुटनो चलता शिशु है अभी।

भारतीय—अच्छा (**व्यंग्य से**), और क्या आप यह बताने की कृपा करेगे कि आपका विज्ञान किस लोक का विज्ञान है?

मेधावी—(**हँसकर**) मगल-लोक का।

अमेरिकी—तो क्या हम लोग इस समय मगल-लोक मे है?

मारुत—जी हाँ, और मैं यहाँ का एक वैज्ञानिक हूँ।

अंग्रेज---**(प्रसन्नता से)** ओह ! हमने मगल-लोक जीत लिया !

अमेरिकी--**(बिगड़कर)** यह रॉकेट हमारा है, मगल-लोक की विजय का श्रेय हमे मिलेगा।

अग्रेज---वाह ! ससार की सर्वोच्च चोटी हमने जीती, मगल-लोक की विजय भी हमारे बिना असम्भव थी।

भारतीय--एवरेस्ट विजय हमारे बिना असम्भव थी। मगल-लोक पर भी हमारा अधिकार है।

रूसी---**(क्रुद्ध स्वर मे)** ओर जैसे हमने कुछ किया ही नही ! **(अमेरिकी की ओर मुड़कर)** तुम्हारी तो नीति ही सदैव पूँजीवादी रहती है। मगल-लोक पर हम चारो का अधिकार होगा, समझे ? लाल मगल पर लाल रूस का अधिकार। ओह, कितना सुखद .....! कितना .....!

मेधावी--आप लोग व्यर्थ मे क्यो विवाद कर रहे है ? आप किसी ने भी हमारा लोक नही जीता।

अमेरिकी--हमारा रॉकेट यहाँ पहुँचा या नही ?

मेधावी--रॉकेट पहुँचा नही, लाया गया। हमने अपनी आकर्षण किरणो से उसे यहाँ खीच लिया। **(हँसकर)** मेरे सहकारी मारुत को मानव देखने की इच्छा थी, आप विजयी नही, हमारे बन्दी है !

अमेरिकी--बन्दी ?

मेधावी---हाँ !

(सहसा अमेरिकी और रूसी विद्युत्-वेग से अपने वस्त्रों से पिस्तौल निकालकर क्रमशः मेधावी और मारुत पर गोली छोड़ने लगते है। गोलियों का उन दोनों पर कोई असर नहीं होता। वे खड़े हँसते रहते है। पिस्तौले खाली हो जाती है। मेधावी और मारुत को हंसता देख दोनों घबरा जाते है। उनके हाथों से पिस्तौलें छूटकर नीचे गिर जाती है।)

मेधावी—(**हंसकर**) और कोई अस्त्र-शस्त्र है ?

(**सब अवाक् होकर उसका मुख देखते रहते हैं।**)

मेधावी—हमने मृत्यु पर भी विजय पा ली है। ऐसा है हमारा विज्ञान ! (**अमेरिकी से**) आपका एच० बम भी हमारा कुछ नही बिगाड सकता !

अमेरिकी—आप क्या जानते है एच० बम के बारे में ?

मेधावी—हमसे भूलोक की कोई बात छिपी नही है ! आप लोगों के लिए हमारा लोक भले ही जिज्ञासा का विषय हो, पर हम आपके विषय मे सब कुछ जानते है। मै तो कई बार भूलोक हो भी आया हूँ !

सब—(**आश्चर्य से**) अच्छा !

मेधावी—हाँ ! जहाँ आपका रॉकेट उतरा है, वही आपने हमारा भी 'स्पेस शिप' देखा होगा ! बहुत शक्तिशाली है वह। हमारे सब यंत्र अद्भुत है ! इस दूरदर्शीयत्र से आप अपनी पृथ्वी स्पष्ट देख सकते है। आइए। देखिए !

(**सब बारी-बारी से देखते है। सबके मुखों पर आश्चर्य के चिह्न है।**)

भारतीय—आश्चर्य है ! अच्छा, आपने अभी कहा था कि आपने मृत्यु को जीत लिया है, तो क्या यहाँ सब अमर है ?

मेधावी—हाँ, यह अमरो का लोक है। हमने अपनी सभी आवश्यकताओ पर विजय पा ली है। न हमे भूख लगती है, न प्यास ! यह वस्त्र जो हम पहने है, सहस्रो वर्ष पुराने है। यह न मैले होते है और न गन्दे !

रूसी—आप कुछ खाते-पीते ही नही ?

मेधावी—हमने एक ऐसी गोली का आविष्कार किया है, जिसे एक बार खा लेने से सौ वर्ष तक भूख-प्यास नही लगती।

अमेरिकी—आपको न अन्न की चिन्ता है और न वस्त्र की ? तब आप दिन भर करते क्या है ?

मेधावी—निश्चिन्त होकर गम्भीर अन्वेषण कार्य करते है।

अंग्रेज—तो क्या यहाँ सब वैज्ञानिक ही है ?

मेधावी—नही ! कलाकार, कवि, लेखक, चित्रकार सभी है। सब अपनी-अपनी कलाओ के विकास के लिए ही प्रयत्नशील रहते है। स्वस्थ शरीर और स्वच्छ मन से ही शुभ कार्य हो सकते है। जानते है, हमारे लोक का नाम मगल-लोक क्यो पडा ?

भारतीय—आप ही बताइए ।

मेधावी—हम व्यक्ति, जाति, धर्म, भाषा और राष्ट्र के हित से बहुत ऊपर उठकर समस्त ब्रह्माण्ड के हित की बात सोचते है ! हमारा ध्येय विश्व-कल्याण है।

भारतीय—आपके यहाँ जाति, धर्म, भाषा और राष्ट्रो का भेद नही है ?

मेधावी—नही । हमने आप लोगो की भाति अपने लोक को काटा-छाटा नही है ! हम उस सस्कृति मे विश्वास करते है जो एक और अविभाज्य है। आप लोग स्वार्थी है। हम हर भूवार को परमात्मा से प्रार्थना करते है कि वह भूलोक-वासियो को सद्‌बुद्धि और पारस्परिक सद्‌भावना प्रदान करे ।

भारतीय—यह भूवार कौन-सा वार है ?

मेधावी—(**हंसकर**) जिसे आप मगलवार कहते है, वह यहाँ भूवार कहलाता है । जैसे आपके यहाँ मगली सन्तान होती है, वैसे यहाँ 'भुइ' सन्तान होती है। (**हंसकर**) मेरा सहकारी भू-नक्षत्र मे ही पैदा हुआ था।

रूसी—आपने अभी परमात्मा का नाम लिया था। क्या आप लोग भी परमात्मा पर विश्वास करते है?

अमेरिकी—क्या अपनी तरह सबको नास्तिक समझते हो **(मेधावी से)** महाशयजी, कितने गिरजे होगे इस मगल-लोक में?

मारुत—यहाँ इस नाम की कोई वस्तु नही।

भारतीय—**(अमेरिकी से)** तुम तो सभी को ईसाई समझते हो। यह लोग आर्य है, आर्य! **(मारुत से)** मदिर है?

मारुत—नही। यहाँ मदिर-मस्जिद-गिरजा कुछ भी नही है। हम इस प्रकार के धर्म को नही मानते। भ्रातृत्व ही हमारा धर्म है और हमारे हृदय ही परमात्मा के पूजा-गृह है।

भारतीय—**(प्रसन्न होकर)** प्यार को परमेश्वर तो हम भी मानते है।

मेधावी—हम केवल मानते ही नही, उस पर आचरण भी करते है। आप लोग सोचते कुछ है, करते कुछ और है **और** कहते कुछ और ही है!

अग्रेज—आप सत्य कहते है। **(रूसी की ओर व्यंग्य से देखकर)** हममे कुछ लोग ऐसा ही करते है। अच्छा, श्रीमान जी, आपका राजा कहाँ है? हम उसके दर्शन करना चाहते है।

मेधावी—यहाँ कोई राजा नही है।

रूसी—यह समझते है कि इनकी तरह हर कोई राजतन्त्र को पकड़े बैठा है! आज जनता का युग है, राजा का नही।

अमेरिकी—कदाचित् आपके यहाँ हमारे देश की तरह राष्ट्रपति होता होगा। किस पद्धति से चुनाव होता है? प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष से?

मेधावी—यहाँ राष्ट्रपति भी नही है।

भारतीय—कदाचित् आपने हमारी भाति कई पद्धतियो का सम्मि-

श्रण किया है। आपके यहाँ भी प्रधान मंत्री और राष्ट्रपति दोनों ही होंगे ?

मेधावी—जी नही, हमारे यहाँ कुछ भी नही है। यहाँ न राजा है और न राज्य; न राष्ट्रपति है और न राष्ट्र। हमारा समाज र.ज्यहीन और वर्गहीन समाज है।

रूसी—(**प्रसन्नता से**) यह है सच्चा साम्यवाद। इसी की प्राप्ति की चेष्टा हम कर रहे है। मंगल के लाल होने का कारण अब स्पष्ट हुआ। (**जोर से**) लाल मंगल जिन्दाबाद! लाल रूस जिन्दाबाद!!

अमेरिकी—(**व्यंग्य से**) लाल चीन को क्यो भूल गए?

रूसी—(**व्यंग्य से**) एक दिन अमेरिका भी लाल हो जायगा।

अमेरिकी—(**हँसी मुद्रा से**) उनके रक्त से, जो उधर कुदृष्टि डालेगे!

मारुत—आप लोग लडते क्यों है?

मेधावी—बिना लड़े यह लोग जिन्दा नही रह सकते। इनका युद्ध शान्ति के लिए होता है। (**हंसता है**) तभी तो इन्हे पुलिस और सेना की आवश्यकता होती है। इनके वैज्ञानिक संहारक यंत्रों का ही निर्माण करते है। इनके कवि और लेखक घृणा और हिंसा का ही प्रचार और प्रसार करते है।

रूसी—मै आवेश में आ गया था, क्षमा चाहता हूँ।

अमेरिकी—और मै भी।

अंग्रेज—ठीक है। (**मेधावी से**) तो क्या यहाँ पुलिस और सेना भी नही ह? तब व्यवस्था कैसे होती होगी?

मेधावी—यहाँ सब सन्तुष्ट है। न कोई निर्धन है न धनी; न कोई ऊँच है न नीच। यहाँ सब समान है। प्यार के बन्धन से सब बँधे है। इसीलिए सब कार्य सुचारुरूप से स्वतः होता है।

अमेरिकी—मैं समझता हूँ, अराजकतावादियों ने जिस समाज की कल्पना की है, वह यही है।

मेधावी—आप जो चाहें समझ सकते है। मैंने सही बात कह दी। हम शान्ति के पुजारी है। पुलिस और सेना का यहाँ क्या काम!

रूसी—फिर यह मशीने···?

मेधावी—मशीने हमारी दास है, हम उनके दास नही! हमारी मशीनें ध्वंस नही, निर्माण करती है!

अमेरिकी—और यदि कोई आक्रमण करे तो?

मेधावी—तो उसका उपचार भी है। **(छोटी पेटी खोलकर उससे अंडाकार एक गोला निकालकर दिखाता हुआ)** इस छोटे-से गोले मे आपके हजारो एच० बमो की शक्ति निहित है। आपकी पृथ्वी के लिए यही एक गोला बहुत काफी है। हमारे पास ऐसे सैकडों है।

(वह गोलायथास्थान रख देता है। चारों के मुखों पर भय और विस्मय के चिह्न है।)

अमेरिकी—इसमे हजारो एच० बमो की शक्ति है?

मेधावी—हाँ। इसे हम प्रलयकर बम कहते है। आप लोगो को इसे मैंने केवल इसलिए दिखाया है, जिससे आप अपनी शक्ति पर गर्व न करे। आप लोगो की रक्त की प्यास बढती जा रही है। भूलोक की इस हिंसा का प्रभाव और ग्रहो पर भी पड रहा है। हमे यह पसन्द नही, क्योकि इससे हमारे महान् उद्देश्य मे बाधा पड़ती है।

भारतीय—क्या है आपका महान् उद्देश्य?

मेधावी—हमारा उद्देश्य है समस्त ग्रहो का संघ स्थापित करना। आपका भूलोक उसमे सम्मिलित होगा?

अमेरिकी—हम तो सदैव से संघ मे विश्वास करते है। हम भीत शान्ति के पुजारी है। इसी उद्देश्य से एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था···

मेधावी--(**बीच में ही**)वह जैसी है, हम जानते है। यदि भू-लोकवासी युद्ध से विरत नही होते तो फल बहुत बुरा होगा।

रूसी--क्या यह धमकी है ?

मेधावी--यही समझ लीजिए ! आपने मशीने बनाई पर आज वे आपकी स्वामिनी है, आप उनके दास है। मानव स्वयं एक मशीन बन गया है, जिसके दिमाग तो है पर हृदय नही। शान्ति की दुहाई देना ढोंग है। सब एक-दूसरे के रक्त के प्यासे है।

भारतीय--आप यह नही कह सकते। हमारा सदैव यह प्रयत्न रहा है कि विश्व मे शान्ति रहे।

मेधावी--हाँ। आपके प्रयास अवश्य सच्चे और सराहनीय है। आप ही विश्व का नेतृत्व करे ! आप ही इसे महानाश से बचा सकते है। (**शेष तीनों से**) सुन लीजिए आप लोग। यदि विश्व का कल्याण चाहते है तो भारत का अनुकरण कीजिए।

(**तीनों मौन रहते है।**)

मेधावी--चन्द्र और मंगल लोक तक पहुँचकर उन पर अधिकार करने का दुस्साहस फिर न हो। हमारा प्रलयंकर बम देख ही चुके हो। आप लोगों के लिए आपकी पृथ्वी ही बहुत विशाल है। आँखें खोलकर, स्वार्थ का चश्मा उतारकर देखने भर की देर है। जाइये, यह है आपकी पृथ्वी के लिए हमारा सन्देश। इसी मे सबका कल्याण है।

सब--(**उत्साह से**) आप सच कहते हैं !

मेधावी--तब जाकर यह सन्देश पृथ्वी के एक छोर से दूसरे छोर तक पहुँचा दीजिए। जाइए, आपका रॉकेट आपको भूलोक तक वापस ल यगा।

(**सब प्रसन्न होकर जाते है।**)

मारुत--मानव मानेंगे हमारा सन्देश ?

मेधावी—क्यो नही ! इसी मे उनका हित है । तभी मगल, मानव और मशीन का समन्वय हो सकेगा।

मारुत—(हंसकर) यह आपने ठीक कहा। मगल, मानव और मशीन !

(ध्वनियंत्र से घरघराहट की तेज आवाज आती है, जो क्रमशः धीमी होती जाती है। मेधावी अपने यंत्र की ओर झुकता है। धीरे-धीरे यवनिका गिरती है।)

समाप्त